PREFACE.

Since the publication of my primary work " Shil Sawitri Natak ", having found that it has met the appreciation of the men of leading and light as an instructive story for the young women of India, I have been cherishing innumerable new ideas for the betterment of the moral condition of the fair sex, and in order to lay them before the public in an interesting drama, I have selected this story so that it may be both novelty and didactic. From the notes on the title page my readers should not guess that I am going to relate a religious story. It is only for its being a useful apparatus to give vent to my sincere ideas that I placed my choice on it. That all the Hindi knowing public might take interest in the story, I have made it a general instructive comedy, without any regard to the religious sentiments. My chief aim by its publication is to show the ennobling elegance of the female friendship which is the chief ornament of prosperity and the only consolation in adversity, and the dangers of the violation of the marriage bed

As I am possessed of very little intellectual power in comparison to that of my readers, I hope they will excuse me for any sort of errors or incorrections that they may come across in going through this little work of an incompetent hand.

Bharatpur,
12th March 1899.

Truly yours
KANAHIA LAL.

नाटक पात्र।

महेंद्र	महेंद्रपुरका राजा
प्रह्लाद	आदित्यपुरका राजा
पवनजय	प्रह्लादका पुत्र (नायक)
प्रसन्नकीर्ति	महेंद्रका पुत्र
अमरसागर, कुमति, विदूषक	राजा महेंद्रके मत्री
प्रहस्त	पवनजयका मित्र
मुद्गर	सेनापति
क्रूर	केतुमतीका किंकर
प्रतसूर्य	महेद्रका साला
मणिचूल	वनीका गाधर्व

स्त्रीगण।

हृदयवेगा	महेद्रकी रानी
केतुमती	प्रह्लादकी रानी
अजनासुदरी	महेद्रकी पुत्री (नायिका)
वसतमाला, मिश्रकेशी, मदनिका	अजनाकी सहेलियाँ
चपला	केतुमतीकी सखी
सुलक्षणा	हृदयवेगाकी सखी
सुशीला	प्रतसूर्यकी स्त्री
रत्नचूला	मणिचूलकी स्त्री

द्वारपाल, मालिन, प्यादे आदि.

॥ श्रीः ॥

अञ्जनासुन्दरी नाटक।

(स्थान रंगभूमि)

(नांदी मंगलपाठ करताहुवा आता है.)

दोहा—परब्रह्म परमात्मा, परमज्योति निर्मेष।
स्वयंजात जगतःगुरू, वीतराग विद्वेष ॥

[सूत्रधारका प्रवेश.]

सूत्रधार—वाहजी वाह ! क्या उत्तम सभा बनी है।

चौपाई।

"सजनसमूह सुशोभित दर्शत। हृदय उमंग चित्त अति हर्षत ॥
सभा रची बहु सभ्य मनोहर। परम प्रवीण कुलीन सुघड़ नर ॥
उठत तरंग मोद अति भारी। सुंदर सभा दरश सुखकारी ॥
सज्जन पंडित गुणी प्रवीना। देश देशके चुने नगीना" ॥

अहा ! हा ! ! हा ! ! ! इस मंडपकी सुंदर शोभा देखकर तो स्वयम् चित्त प्रेरणा करता है कि, ऐसे बुद्धिमानोंके सन्मुख अपने गुणका भी कुछ प्रकाश करना चाहिये, सत्य है जहॉं जिस गुणका कोई ग्राहक होताहै उसकी वहीं प्रतिष्ठा होतीहै, किसी कविका वचन है—

दोहा—"जहॉं न जाको गुण लहे, तहॉं न ताको काम।
धोबी बसके क्या करै, दिगअम्बरके ग्राम" ॥

(कान लगाकर) क्या कहती हो?

नटी-(कुछ अन्तरसे) यदि आप आज्ञादें तो मैं भी आऊ ।

सूत्रधार-हा हां आवो आवो न प्रिये ! यह सुंदर रचना देखो, मैं तो तुम्हें बुलानेको ही था ।

[नटीका प्रवेश]

नटी-हे प्रियवर ! आपके चित्तकी आकर्षणशक्ति ही मुझे यहां खींच-लाई आप काहेको परिश्रम करते ।

सूत्रधार-क्यों न हो ! मुझे तुम्हारी प्रीतिसे ऐसा ही भरोसा है. कहो इस समय कोई आवश्यक कार्य तो नहीं है ?

नटी-आपकी आज्ञाका पालन करना ।

सूत्रधार-यह जो मण्डपकी रचना आज हुई है और सभ्यगण एकत्र हुए हैं...........

नटी-हां हां, बस आप विशेष परिश्रम न करैं, मैं समझगई । आपकी इच्छा है कि, कोई नाटक दिखाकर इनके चित्त प्रसन्न किये जांय. नाटकशाला भी विद्या पढनेसे कम उपयोगी नहीं, क्योंकि सहस्रो वर्ष पहिलेकी वार्ता ज्योंकी त्यों आंखोंके सन्मुख दिखाई देती है. आजदिन मनुष्योंका चित्त खेलतमाशोमे बहुत लगताहै इसलिये शिक्षा देनेका सरल उपाय नाटक दिखाना ही है ।

सूत्रधार-वाह क्यो न हो, हो तो सूत्रधारकी स्त्री, झट समझगई, स्त्री हो तो ऐसी ही हो जो संकेतमात्रसे अपने पतिका आशय जानले, फिर कहो तो कौनसा नाटक खेलना योग्यहै ? "शील सावित्री नाटक" तो दिखा ही चुके हैं ।

नटी–हे प्राणेश ! संसारमें सभ्य वही है जो प्रकृतिके प्रतिकूल नहीं चलते जितना जो प्रकृतिके प्रतिकूल है वह उतना ही अधिक असभ्य है, मनकी प्रकृति है कि, सुंदर वस्तुपर मोहित होताहै और मोहासक्त हो ग्रहणीय अग्रहणीय पदार्थका शोच नहीं करता. परन्तु वही जीव धन्य है और उन्हींको धन्य कहना योग्य है जो उचित पदार्थपर मोहित होने और उसीको ग्रहण करते हैं, इसीप्रकार जो स्त्री अन्यपुरुषको छोड अपने पतिसे ही परम प्रीति और स्नेहमात्र रखकर शीलकी रक्षा करती है उसका जीवन इस संसारमें प्रशंसनीय है और परभवमें भी आनंदको प्राप्त होती है, आजदिन भारतवर्षमें बहुधा स्त्रीशिक्षा न्यून होरही है यदि इसी विषयका कोई नाटक दिखलाइये तो परम प्रिय होगा क्योंकि सादे उपदेशकी अपेक्षा दृश्यसे अधिक लाभ होता है।

सूत्रधार–अहा ! हा !! हा !!! इस विषयको सुनकर क्या स्मरण हुआ है? चलो प्रिया चलो।

नटी–क्या स्मरण हुआ कुछ मुझसे भी तो कहिये ?

सूत्रधार–सुनो प्रिये ! अभी जो नवीन नाटक **"अञ्जनासुंदरी"** प्रकाशित हुआ है।

नटी–बस बस–विशेष मैं नहीं सुना चाहती, नाटकका आशय पहिले कहदेनेसे उसका रस जाता रहता है, चलो सज्जितहो आवें।

(सब जाते हैं)

पटाक्षेप।

॥ श्रीः ॥

अञ्जनासुन्दरी नाटक.

अंक १.

प्रथम गर्भांक ।

(स्थान कैलास पर्वतकी एक शिखा.)

[राजा महेन्द्र और उसके मन्त्रियोंका प्रवेश.]

महेन्द्र–(स्वयम्) इस ससारमे माता पिताको कन्या दुःखका कारण है, सज्जन और कुलीन मनुष्योंको यही चिंता लगी रहती है कि, कन्याके योग्य और प्रशसनीय घर मिले और विवाहके पीछे भी यही चिंता लगी रहती है कि, कन्याका सौभाग्य सदैव बना रहै. अब अजना विवाहने योग्य हुई कोई योग्य वर ढूंढना चाहिये. (मन्त्रियोंसे) इस समय मेरे चित्तमें एक चिंता प्राप्त हुई है आप सबसे सम्मति लेताहू, अजना अब विवाहने योग्य होचुकी, इसका विवाह किसके साथ करना उचित है ?

अमरसागर–श्रीमहाराज ! अच्छा कुल और योग्य वर देखलेना माता पिताका कन्याके निमित्त महद्धर्म है. लकापति रावण महाप्रतापवान् राजा है, मेरी सम्मति यही है कि, रावणसे अथवा मेघनाद उसके पुत्रसे अजना सुदरीका विवाह करदीजिये और जो यह भी इच्छा न होय और कन्या अप्रसन्न रहै तो स्वयम्बर रच दीजिये, इसमें माता पिता निर्दोष रहते हैं, पुत्री अपनी प्रसन्नतापूर्वक योग्य वर प्राप्त करलेती है ।

कुमति–(अमरसागरसे) मित्र ! यह तो आपने ठीक कहा, परंतु रावण महाअभिमानी है उसके और हमारे महाराजके इस सम्बन्धद्वारा प्रेम रहना कठिन जानपडता है और उसकी आयुभी अंजनासे बहुत अधिक है और रावणके कई एक स्त्री पहिलेकी भी हैं, यदि मेघनाद रावणके पुत्रसे संबंध हुवा तब भी वही कठिनाई रहैगी और राक्षसी प्रकृतिवाले पुरुषसे अंजना सुदरीकी, जो परमगुणवान् पुत्री है, प्रीति रहना भी कठिन जान पडताहै, राजकन्याको ऐसे स्थानमे देना उचित है जहां उसका आदर सन्मान यथायोग्य हो. (स्वयम्) यह अवसर अच्छा है, कनकपुरके राजा हिरण्यप्रभु-का जो पत्र कल मेरे पास आया उसमें लिखाथा कि, यदि आप राजा महेन्द्र-की पुत्री अजनाका विवाह मेरे पुत्र सौदामित्रीसे करादें तो बडा कृतकृत्य हूगा और मुझे कुछ पारितोपिक प्रदान करनेका नियमभी हिरण्यप्रभुने कियाहै. (प्रगट राजासे) महाराज ! कनकपुरके राजा हिरण्यप्रभुका पुत्र सौदामित्री यशवंत कान्तिधारी नवयौवन अतिसुदर रूपवान् और १४ विद्या ६४ कला-ओंका पारगामी है पराक्रममें भी उसके समान कोई विद्याधर नहीं है. जैसी राजकन्या परम रूपवान् और सर्व-गुण–सम्पन्न है ऐसाही सौदामित्री है सर्व प्रकारसे वह आपकी पुत्रीके योग्य बर है।

महेन्द्र–हे कुमति ! यह सब तुम सत्य कहते हो परन्तु कन्या अपने बराबरके कुलमें अथवा उच्च कुलमे देनी चाहिये अपनेसे नीच कुलमें पुत्री देनेसे वहां उसका अनादर होताहै और कोई सजन पुरुष उच्च कुलकी कन्याका मान आदर सत्कार करना चाहते भी है तो यथायोग्य सामग्री न होनेके कारण असमर्थ रहते हैं, हिरण्यप्रभुका राज्य बहुत छोटा है, (अमरसागरसे) तुमने जो स्वयम्बरकी सम्मति दी इसमें एक बहुत बडा दूषण यह है कि,

अबला बहुधा अनुभवरहित होतीहैं और स्वयम्बरमें एकत्र राजपुत्रोंके वास्त-विक गुणोंको न जान और आंतरीय प्रकृतिको न पहचान बहुधा केवल बहिरंग सुदरता पर मोहित हो बरमाल डालदेती हैं इससे यही उत्तम है कि, कन्याके माता पिता ही समान बर देखकर यथायोग्य जोडा मिला दें और यदि कन्या भी उस बरको स्वीकार करै तो क्याही उत्तम है ।

विदूषक–(हाथ जोड़कर राजासे) महाराज ! अपराध क्षमा हो तो कुछ मैं भी निवेदन करू ।

महेन्द्र–हां मित्र तुम भी कहो, (स्वयम्) विदूषक सबसे अधिक बुड्ढा है देखें यह क्या कहता है ।

विदूषक–(अमरसागर और कुमतिकी ओर हाथ करके) श्रीमहाराज ! इन दोनोंने स्वार्थ देखलिया और उस बिचारी कन्याका कुछ ध्यान न किया, सौदामित्री तो स्त्रियोंकी सूरत देखते ही भागता फिरता है, उसके जीमें तो मूँड मुँड़ानेकी है अठारह वर्षकी अवस्था हुई और वह नगरको छोडकर भागा, कहिये फिर आपकी पुत्रीको कैसा कष्ट होगा और उसका सौभाग्य कहा रहेगा, रात्रिकी चद्रमासे ही शोभा होती है. इन सबसे आदित्यपुरके राजा प्रह्लादका पुत्र पवनजय बहुत अच्छा है, उस राजाका सौभाग्य भी आपके तुल्य है और पुत्र भी अतिरूपवान् है और शील आदि गुणोंमें परिपूर्ण है ।

महेन्द्र–वाह मित्र वाह ! ! क्यों न हो, वृद्ध हो ना. क्या उत्तम सम्मति दी है ! पवनजयको स्वयं मैं भी जानताहू, हमारी कन्याके निमित्त वह यथायोग्य बर है ।

कुमति–(स्वयम्) इस समय इस बुड्ढेने कैसी भांजी मारी है, अच्छा सो अब कोई और उपाय करूंगा ।

महेन्द्र—अच्छा तो अब इस विषयको मैं भलीभांति सोच लूं, (राजा प्रह्लादको दूरसे आता हुवा देखकर) (स्वयम्) अहा ! क्या अच्छा अवसर बना है, सत्य है तीर्थयात्रामें सज्जनोंसे भेंट होकर बहुतसे कार्योंकी सिद्धि होजाती है. महाराज प्रह्लादसे भेंट होकर मनवाञ्छित फल प्राप्त होनेकी आश तो होती है (प्रह्लादका प्रवेश) महाराजको नमस्कार करताहूं, आप परिवार सहित कुशलसे तो हैं ? यहां किस कारण आगमन हुवा ? हम सरीखे तुच्छ जीवोंपर कृपादृष्टि है ना ?

प्रह्लाद—मैं भी विनयपूर्वक नमस्कार करताहूं, महाराजकी दयासे सब कुशल है, आप कुछ मुखमलीन कैसे होरहे हैं ? क्या कोई चिंता लगी है ? यहां केवल तीर्थयात्राके निमित्त आयाहूं, कृपा बडोंकी चाहिये, आज मेरी शुभ प्रारब्ध है जो आपसे भेंट हुई।

महेन्द्र—(मंत्रियोंकी ओर संकेत करके) मुझे महाराजसे कुछ वार्तालाप करना है।

(सब मंत्री जाते हैं)

महेन्द्र—(प्रह्लादसे) मैं भी आपके दर्शनोंसे अपना अहोभाग्य मानता हूँ (स्वयम्) यह अवसर अपनी इच्छा प्रगट करनेका अच्छा है, (प्रगट) महाराज ! मैं क्या कहूं एक बडी चिंतामे पडाहूं—बडे कुलमे पुत्रीका जन्म माता पिताको आपदाका घर है, मम लालिनी अंजना अब विवाहने योग्य होचुकी, यदि रावणको दूं तो उसके अंतःपुरमे

बहुतसी स्त्रियां हैं वहां मेरी कन्याका अनादर होगा और वह अति अभिमानीभी है।

सोरठा-"अभिमानीके पास, होय कदाचित अमृतफल।
याकी करै न आश, बुद्धिमान अरु चतुर नर"॥

श्लोक-"अभिमान सुरापानं गौरव घोर रौरवम्।
प्रतिष्ठां सूकरीविष्ठां भयं त्यक्त्वा सुखी भवेत्"॥

और आयुमें भी ठीक नहीं बनता, रावणका पुत्र मेघनाद राक्षसी प्रकृतिवाला है उससे अजनाकी प्रीति होना कठिन है. यदि स्त्री पुरुषमे परस्पर प्रीति न हुई तो दोनोंका जीवन दुखदाई है. विवाहका सुख यथायोग्य परस्पर प्रीतिसे ही प्राप्त होता है—हिरण्यप्रभुका पुत्र सर्व—गुण—सम्पन्न है परतु उसकी इस असार संसारसे अरुचि होगई है और थोडे कालमें परित्याग किया चाहता है—हमारे मत्री विदूषकने यह सम्मति दीहै कि, आपका पुत्र हमारी कन्याके निमित्त योग्य वर है, यदि आपभी कृपापूर्वक मेरी विनयको स्वीकार करैं तो अति उत्तम है।

प्रह्लाद्-यह तो आपने इस समय मेरे मनकीसी बात कहदी मै भी बहुत दिनसे इसी शोचमे हू कि, पवनजयका विवाह किसी उत्तम कुलकी कन्यासे करू सो आज शुभ प्रारब्धसे भेंट होगई और मेरा कार्य सफल हुवा, शुभ मुहूर्त विचार मै अपने पुत्रसहित इस कार्यके निमित्त आपकी सेवामें उपस्थित हूंगा.

(जाते हैं)

द्वितीय गर्भांक।

(स्थान पूर्वोक्त पर्वत.)

(कुमति और मिश्रकेशीका प्रवश)

मिश्रकेशी–कहो मंत्रीमहाशय! आज आपनेइस दासीको क्यों याद किया, ऐसा क्या कार्य है जिसके अर्थ मेरी आवश्यकता हुई?

कुमति–कदाचित् तैने भी सुना होगा कि, महाराजकी पुत्री अंजनाका विवाह पवनजय प्रह्लादके पुत्रके साथ निश्चय हुवा है।

मिश्रकेशी–हां मंत्रीजी! सुनातो है हमारी सखीकोभी यह समाचार सुनकर बडा आह्लाद है और प्यासे पपीहेकी भाँति इस शुभ घडीकी बाट निहार रही है।

कुमति–(पाँच मुहर मिश्रकेशीके हाथमें देकर) यह लो यह तुम्हारा पारितोषिक है।

मिश्रकेशी–मैंने कौनसी ऐसी आपकी सेवा की है कि, जिसके पलटे आज मुझे यह पारितोषिक प्रदान किया जाता है?

कुमति–हे सजनी! नहीं यह तो तुम्हारे यहां आगमनकी भेंट है, तुम्हारी सखी तुम्हारा कुछ कहाभी मानती है?

मिश्रकेशी–क्यो नही–मैं और वह बालकपनसे साथ खेली है, जो भाँतिकी बात उससे कही जाती हैं अवश्य मान लेती है, आप अपना प्रयोजन कहिये।

कुमति–हमारा तुम्हारा दोनोंकाही प्रयोजन है किसी प्रकार अपनी सखीको हिरण्यप्रभुके पुत्र विद्युतप्रभुसे जिसको सौदामित्री भी कहते हैं विवाह करनेपर उद्यत करो और पवनजयकी प्रीतिको उसके मनसे हटावो–इसमें हमारा और तुम्हारा दोनोंकाही लाभ है।

मिश्रकेशी–यह तो आपने बडा कार्य सौंपा–राजासाहबके सन्मुख आपका वश नहीं चला तब मुझे याद किया है, यद्यपि अञ्जनाने अभी पवनजयका मुखभी नहीं देखा है परंतु बसंतमालाने उसकी ऐसी प्रशसा अञ्जनाके सन्मुख की है कि वह तो रात दिवस पवनजयके ध्यानमेंही मग्न रहती है और नाम लेनेसे बहुत प्रसन्न होती है, परतु आपकी आज्ञाका यथाशक्ति निर्वाह करूंगी, अब आज्ञा दीजिये आज महाराज नगरको प्रस्थान करैंगे मै दर्शन करके सखीके निकटही जातीथी मार्गमेंही आपका दूत मिला और मुझे यहां लिवा लाया।

कुमति–क्या कहैं बुड्ढेने काम बिगाड़ दिया, अच्छा तो अब जावो अधिक विलम्ब मत करो. मुझेभी गमनकी तैयारिकरनी है।

मिश्रकेशी–(जाती है)

कुमति–(स्वयम्) देखिये यह प्रयत्न चलगया तब तो कुछ कार्यसिद्धि की आशा होती है, क्योंकि यदि अञ्जना न चाहैगी तो महाराजभी उसकी अप्रसन्नता होते हुए पवनजयसे विवाह न करैंगे, यदि यह कार्य सिद्ध होगया तो जो पारितोषिक हिरण्यप्रभुके यहाँसे मिलैगा आधा उसमेसे मिश्रकेशीको दे दूगा॥ (जाता है)

(पटाक्षेप)

अंक २.

प्रथम गर्भांक।

(स्थान आदित्यपुरके समीप मानसरोवरके तटके निकट एक वाटिका.)

[पवनजयका प्रवेश।]

पवनजय–(स्वयम्) अभी तो उस सुंदरीसे कल मिलाप होगा देखिये यह दिन कैसे व्यतीत हो, जबसे उस मृगनयनीके सौंदर्यकी प्रशंसा सुनी है चित्त वडा विह्वल होरहा है, कामज्वर अधिक दुःख देरहा है, उस सुंदरीके देखनेको जी चाहता है, मन विकल होरहा है, न भोजन अच्छा लगता है न पुष्पोंकी सुगंध भाती है, न राग रागिनीमे जी लगता है, उस भावनिसे वार्तालाप करनेकी परम इच्छा लग रही है, वहुतेरा अपने जीको रोकता हूं और बुद्धिसे काम लेता हूं परंतु कुछ वश नहीं चलता और मन हाथसे निकला जाता है, अव मैं धैर्य नहीं धरसकता क्या करूं कहीं चित्त नहीं लगता, वह कौनसी शुभ घड़ी होगी कि वह प्रिया मेरे निकट बिराजै और मैं अपनी प्रीति दरशाऊँ और रसभीनी वार्ता उस प्राणप्यारीके मुखसे सुनूं. शरीर मेरा यहां है परंतु मन न जाने कहां २ घूम रहाहै (कपोलपर हाथ रख शोच अवस्थामें एक वृक्षके नीचे बैठता है.)

[प्रहस्तका प्रवेश.]

प्रहस्त–मित्र! यहां कहां आगये हो? आज किस शोचमें हो? क्या चिंता है? आपके कपोलसे ऐसा पसेव क्यों वहता है, शरीर क्यों काँप

रहाहै; बारम्बार जँभाई क्यो लेतेहो, शून्यताके साथ क्या निहार रहेहो, आपका ध्यान किधर है बोलते क्यों नहीं? चित्तवृत्तिको संभालो और अपना दुखडा कहो. तुम्हारे विवाहका काल निकट है तुमको उदास न होना चाहिये।

पवनजय—(ऊपर देखकर) आवो मित्र अच्छे अवसरपर आये. इस जगत्में मित्रके समान और कोई आनदका कारण नहीं है. मित्रकी सहायतासे सब कार्य सिद्ध होतेहैं. तुम मेरे परम मित्र हो, हमारे तुम्हारे दो देह और एक मन है. तुमसे मेरा कोई भेद छिपा नही, अब मैं अपना दुःख क्या कहू कहते हुये लज्जा आतीहै, परतु यदि प्रजा अपना दुःख राजासे, शिष्य गुरुसे, स्त्री पतिसे, रोगी वैद्यसे, बालक मातासे और बुद्धिमान् अपने मित्रसे न कहे तो उसका दुःख निवृत्त नहीं होता. अंजनासुदरीके रूपकी प्रशंसा सुनकर मेरी यह बिकल दशा हुई है. अब उस सुदरीके देखे बिना चैन नहीं पडता, यदि तुम मेरे सच्चे मित्र हो तो कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे शीघ्रही मिलाप हो. प्रेम करनेसे पहिले अपने मित्रकी प्रीति अपने मनमे उत्पन्न करनी योग्य है सो मैं करचुका, अब मेरा मन प्रीतिबश होकर प्रियाके पीछे दौडनेको प्रेरणा करता है और मेरे वशमें नहीं रहा चाहता।

प्रहस्त—मित्र! भाग्यके तुम बली हो जो अजनासुंदरीको समान स्त्री तुमको प्राप्तहुई. अंजनाकासा सौंदर्य आजदिन इस पृथ्वीभरमें अन्य स्त्रीका नहीं. मैंने अजनाको स्वय देखा है. उसके कमलकेसे नेत्र जिस समय कटाक्ष कर देखतीहै बाणके समान हृदयमें पार होजाते हैं. केहरिकीसी कटि, कदलीस्तभ समाम कोमल जंघा, जिस समय शीतल पवनके झकोरेसे नागिनसी

लटैं कोमल कपोलोपर लहराती हैं साक्षात् ऐसा ज्ञान होताहै मानो पूर्ण चंद्रमाके सन्मुख काली रेखा आगई है आपका भी अधैर्य होना निष्काम नहीं।

दोहा–"कामज्वर पीड़ित हुये, नाभि सुंदरी देख।
विह्वल होते हैं सदा, ज्यों चकोर विधु पेख" ॥

और यह जीवन पर्यंतका संयोग है; विचारकर करना चाहिये.

पवनजय–हे मित्र! अब सूर्य गया और उसके वियोगसे दिशा काली पडगई चलो अब हम उस प्राणवल्लभाको देखैं।

प्रहस्त–अच्छा पवनजी! चलो (कान लगाकर) मित्र! तुम्हारा भाग्य बलवान् है, वह देखो एक स्त्रियोंके झुंडके बीचमें अंजनासुदरी हाथीके समान घूमती चली आतीहै. देखो अब सबने बाटिकामें प्रवेश किया, चंद्रकांति पडनेसे उस सुंदरीका मुख कैसा चमक रहा है. आवो हम तुम इसी लताकी आडमें बैठकर इनके कौतुक देखैं।

पवनजय–देखो प्रहस्तजी! अञ्जनाकी साडी गुलाबके काटोंमें उलझ रही है वह तो उसे सुलझातीही रही और सखियां सब छोडकर आगे बढ आई हैं, यह अवसर अच्छा है, मैं भी जाकर प्राणवल्लभासे भेट करके अपने मनको सतुष्ट करलूं (जाना चाहता है)–

प्रहस्त–हैं! हैं!! मित्र! यह क्या करते हो? अभी वह अबला पिताके आधीन है, तुम्हारा उसपर कोई अधिकार नहीं, अपने मनको सँभालो और बुद्धिसे काम लो, प्रथम यहां बैठकर देखना चाहिये कि यह किस कार्यको यहां आई है फिर अवसरानुसार कार्य करना उचित है।

(बैठ जाते हैं)

(अञ्जनासुन्दरीका वसन्तमाला मिश्रकेशी ओर कई एक सखियों सहित प्रवेश.)

पवनजय–देखो मित्र ! वे स्त्रिया यहा चद्रमाका मद प्रकाश होनेके कारण हमको नहीं देख सकतीं और हम उनको देखते हैं, यही स्थान उत्तम है, यह स्त्री जो इन सबके बीचमें है और जिसके चद्रमुखपर दृष्टि नहीं ठहरती वही अंजना जान पडती है, अहा ! रात्रिमें यह सूर्य कहांसे निकल आया ।

प्रहस्त–हां ! यही अंजनासुन्दरी है ।

पवनजय–अहो ! इसके मुखकी कांति देखकर तो चन्द्रमा भी लज्जित होता है, अरुण और श्वेत नेत्रोंमें श्यामता कैसी सुदरहै किसी कविने सत्य कहाहै ।

दोहा–"अमी हलाहल मदभरे, श्वेत श्याम रतनार ।
जियत मरत झुकझुक पडत, जिह चितवत इक बार ॥ १ ॥

सुंदर कुच मानों शृगाररसके भरेहुए कलश हैं

दोहा–रक्तहथेली पगथली, कोंपल नई सयान ॥
अद्भुत कांती नखनकी, नाजुक तनु अनुमान ॥ २ ॥
कटी कुचनके भारतें, डोलत डामाडोल ।
त्रिवली तट गातें बँधी, अधर सहारत झोल" ॥ ३ ॥

अब चुपचाप बैठकर इनका वार्तालाप सुनो और मधुर अधरोंकी छबि निरखो, कपोलोंको प्रफुल्लित करके रसीले नेत्रोंसे अपनी सखियोंकी ओर कैसी निहार रही है मानो रसभरे होठोंसे कुछ प्रीतिमय वचन कहना चाहती है परन्तु लाजभरी सकुच कर रह जाती है (चुप बैठ जाते हैं)–

वसंतमाला–(अंजनासे) हे सजनी ! अब वसंतऋतु आई शीतऋतु गई, कमलोंपर भ्रमर गुंजार रहे है, वृक्षोंके नयेनये पल्लव प्रगट हुए, मंजरी खिलनेसे कोकिला मधुर ध्वनि कर रही हैं. हे सुरूपे ! तू धन्य है जो ऐसी प्रिय ऋतुमें प्रियतमसे मिलाप करैगी. पवनके प्रसंगद्वारा केशरकी क्यारियोंसे सुंदर सुगंध चली आती है. हे सखी ! तू तो हर्षके मारे फूली नहीं समाती परंतु हमारी हमही जानती है ॥

ठुमरी राग वसंत ।

आई वसंत नव पल्लव निकसे, आम्रकली भई बिकसतरी ।
कोकिल शब्द सुनाय रसीले, देख मौर भये हरषतरी ।
अरुण फूल टेसूके फूले, मदन दिखाई रंगतरी ।
घर घर गान करे सब सखियां, गहकर बीन अरु बरबतरी ।
मंगल मोद छयो चहुँदिशिमे, अग अंग भये पुलकतरी ।

अंजना–तू क्यों घबराती है ? तुझे तो अपने साथ ही रक्खूंगी ।

वसंतमाला–(सब सहेलियोसे) आवो कुछ और गाकर सखीको रिझावैं ।

सब सहेली–(ठुमरी राग आसावरी)

तू तो बहुत रही बाबुलके, गोरी चल तोरे पियाने बुलाई ।
भोरी भोरी बतियां करक बहुरि रिझाई माई ।
अब जो प्रिय पीतमको रिझवो, जगमे लेउ भलाई ।
झूठ कपटको त्यागन करके, और सभी निठुराई ।
सासू ससुरको विनय भक्तिसों, कर प्रसन्न हरषाई ।

मात पिता अरु संग सहेली, भ्रात मातके भाई।
अपने जियसे कबहुँ न बिसरौ, लिखौ पत्र कुशलाई।
तन मन यौवन करौ निछावर, प्राणपतीके बाई।
चिरजीवो प्रिय तुमरी जोडी, बधवै बेल सघाई।

अंजना–तुम बडी चतुर हो, क्या समयकी कही है.

सब सहेली–हे सौभाग्ये ! कुछ और सुन.

(ठुमरी राग आसावरी।)

करले शृंगार चतुर अलबेली, साजनके घर जाना भी होगा।
पिया प्रकृतिको देख सयानी, रँगमें रंग मिलाना भी होगा।
अचल चपल चतुरता करके, प्रीतम प्रीति बढ़ाना भी होगा।
सास ननँदके बोल सहोगी, मनमें बात गुहानाभी होगा।
कोमल बचन सुनाय सुंदरी, बांधव चित्त रिझानाभी होगा।

अंजना–(मुसकुराकर) तुम बडी निठुर होगई हो.

(एक मालिनका एक हाथमें हार और दूसरेमें छड़ी ओर कंकन लियेहुये प्रवेश.)

मालिन–(अंजनाको हार देतीहुई) यह पुष्प आपसे गले मिलनेकी प्रार्थना करते हैं।

अंजना–(हार लेकर) यह और क्या लाई है।

मालिन–(फूलोकी छडीको आगे करके) बाईजी साहब ! यह फूल खिलकर आपके चन्द्रमुखकीसी चेष्टा बनाते थे इसलिये इनको मैंने शूलीपर चढ़ाया है (छडी देती हुई) यह लीजिये।

मिश्रकेशी–मालिन बडी चतुर है।

अंजना–(फूलोंको देखकर मालिनसे) आज केतकी और चमेलीके फूल इनमें क्यों नहीं हैं।

मालिन–बाईजी! वह कलियां आपके वियोगसे कुंद होरही हैं आज खिली नहीं–(कंकन देती हुई) यह द्वितीयाका चन्द्रमा आपके करकमलकी शोभा देखने आयाहै।

वसंतमाला–(मालिनसे) तेरी वातें वडी रसीली हैं अंजनाके विवाहका समाचार सुना होगा।

मालिन–क्या कस्तूरी डिब्बियामे छिप सकती है? (अंजनासे) अब मुझे केशरकी क्यारियोंको सँभालना है आज्ञा दीजिये।

अंजना–(अँगूठी उतारकर देती हुई) अच्छा मालिन जावो।

(मालिन जाती है)

पवनजय–(होले २ प्रहस्तसे) क्यों मित्र! इन स्त्रियोंने कैसे मधुर स्वरसे गाया है और क्या फवती कही?

प्रहस्त–पवनजयजी! नवयौवना स्त्रियोंके वचन सदैवही प्रिय मालूम होतेहैं।

दोहा–"मधुर राग अति प्रिय लगै, श्रवण होत संतुष्ट।
मन हुलसै सब तनु हँसै, जीव होतहै पुष्ट" ॥

पवनजय–इस सुदरीके कोकिलवत् मृदु वैन मेरे हृदयमें पार हुए जाते हैं।

दोहा–"बोलत अति छवि देतहैं, सुदर अधर कपोल।
झुंड सखिनके बीचमें, कामिनि करत किलोल" ॥

बसंतमाला–(अंजनासे) हे सुरूपे ! तेरा अहो भाग्यहै जो पवनजय सरीखा वर तुझे प्राप्त हुआ, उनके गुण सारे जगत्में विख्यात हो रहेहैं, हे चद्रमुखी ! शशिवदनी ! तुम्हारा सम्बन्ध प्रशंसायोग्य है, तुम्हारे माता पितादि भी इस सम्बन्धसे अत्यंत प्रसन्न हैं यथायोग्य जोडा मिलगया।

अंजना–(लज्जासे नीचे देखतीहुई) बसन्तमाला ! तू बडी ढीठ होगई है–(मुसुकुरातीहुई स्वयम्) रे मन ! तू जन्मभर मेरा रहा अब पलभरमें क्यों पराया हुआ जाता है ?

मिश्रकेशी–(होंठ चबाकर) बसन्तमाला ! तू पुरुषकी परीक्षा नहीं जानती विद्युत्प्रभुके सामने पवनजय ऐसा भी नहीं है जैसे दिवाकरके सन्मुख दीपक और गुलाबके सम्मुख कनेर. यदि उससे सम्बन्ध होता तो अत्यन्तहीं श्रेष्ठ था विद्युत् प्रभुके गुण मैंने सुने हैं और मै जानतीहू वह नवयौवन पुरुष महासौम्य और दैदीप्यमान है. प्रताप विद्या और बुद्धिमें उसके समान और कौन है ? कहां हमारी सखीका रूप और कहा तुच्छ पवनजय ! ! हमारे महाराजने कमलको घूरेपर फेंकदिया, योग्य पुरुषसे एक क्षणभरका सयोगही भला होताहै.

बसंतमाला–सखी ! चद्रमाका प्रकाश यदपि तारागणोसे विशेष होताहै परंतु सूर्यसे नहीं.

प्रहस्त–(पवनजय से) इनकी रसभीनी बार्ता सुनकर तो यहासे जानेको जी नहीं चाहता ।

पवनजय–बस, मित्र ! क्षमाकरो (क्रोधसे लाल नेत्र करके) कहो इस सखीकी वार्ता सुनी, वह दुष्टिनी मेरी निन्दा कैसे कान लगाकर सुनती रही और संखीसे कुछ नहीं कहा, मदिराकी बोतल केवल देखनेहीमे सुंदर होतीहै–चलो।

सोरठा–"धृक् यौवन धृक् रूप, धृक्धृक् योग्य कुलीनता।
गुण धृक् परम अनूप, वनिता धृक् विन शीलयुत" ॥

में इन दोनोका इसी समय शीश उडा दूंगा देखें विद्युत्प्रभु कहां इनकी सहायता करने आताहै. हे मित्र ! अपराध निश्चय हुए पीछे अपराधीको दण्ड न देना निरपराधीको दण्ड देनेसे कुछ कम नहीं. यह इसकी सहेली भी कुटिला जान पडतीहै फिर यह ब्रह्मचर्यनी कैसे होसकतीहै ? चक्कीमे गया हुवा दाना बिना चोट खाये नहीं निकलता.

प्रहस्त–(चकितसा होकर) हैं ! हैं ! ! मित्र ! यह क्या ! अभी तो तुम उस सुदरीपर ऐसे मोहित थे और ऐसी प्रशसा कर रहे थे, अवहीं अब क्या होगया ? स्त्रियोपर शस्त्राघात करना वीरता नहीं है (स्वयम्) यह क्या आपत्ति है. सत्यहै जैसा जिसको अन्य पुरुष अथवा स्त्रीके विषयमें ध्यान वॅध जाताहै फिर उसकी सब क्रिया वैसही भासने लगती हैं.

अंजना–(सहेलियोंसे) चलो अब वहुत वेला हुई माताजी वाट निहार रही होंगी।

(सब जाती हैं)

प्रहस्त–(स्वयम्) चलो; यह अच्छा हुआ।

पवनजय–मित्र ! इस समय तुमने मुझे वडी अनुचित क्रियासे रोका इसका मैं धन्यवाद देता हूं, परंतु इस स्त्रीको तो मैं विना दण्ड दिये न मानूंगा.

प्रहस्त (स्वयम्) हा शोक ! मैंने इसको यहां लाकर उसे बिचारी अंजनाके लिये क्यों कांटे बोये, (प्रगट) मित्र ! ऐसा विचार कदापि मत करो, सुशीलाको दुःख देना सदैव हानिकारक होताहै. उस बिचारीका क्या अपराध है ? वह विद्युत्प्रभुकी प्रशंसा सुन प्रसन्न नहीं हुई यह तो. सखीकी दुष्टता है, अजना अभी कुंदकली सदृश है. विवाह होनेपर परम सती रहैगी, यह महागुणवती स्त्री है.

पवनजय–(त्योरी बदलकर) अभीसे तुमने कैसे जानलिया कि वह सुशीला रहैगी. यदि विद्युत्प्रभुकी प्रशसा उसे प्रिय न होती तो वह सखी काहेको कहती, मित्र ! "स्त्रियश्चरित्र पुरुषस्य भाग्य देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?"

प्रहस्त–(स्वयम्) इस समय विशेष कहना व्यर्थ जान पडताहै, किसी कविने कहा है ।

दोहा–जो रीझै जिहिं भांतिसों, तैसे ताहि रिझाव ।
पीछे युक्ति विवेकसे, अपने मत पर लाव ॥

(प्रगट) चलो तुम्हारे मनमें भावे सो करना, यह समय विशेष यह ठहरनेका नहीं है, अपने डेरे सिधारो ।

पवनजय–(प्रहस्तसे) अच्छा प्रहस्तजी ! चलो ।

(दोनों जाते हैं)

द्वितीय गर्भांक।

(स्थान महेन्द्रपुरमें अंजनाका भवन)

[अजनासुन्दरी और वसंतमालाका प्रवेश]

अंजना–आज मेरी पहिले दाईं और फिर बांई भुजा फडकती है न जाने किस शुभकार्यका अशुभ फल होना है.

वसंतमाला–यह क्या कहती हो ! कहीं गुलाबमे भी कनेरका फूल आता है ?

अंजना–(झरोखेसे देखकर) अरी देख तो ? पवनजीके दलमें काहे की हलचलसी हो रहीहै सर्व सेनाके लोग कमर बांध बांधकर चलनेको तैयार खडे हैं, सवारी तैयार हो रही है । अरी देख तो सही प्राणपतिने कहां जाने का चिन्तवन किया है।

(मिश्रकेशीका प्रवेश)

मिश्रकेशी–(स्वयम्) अब तो कुमति मंत्रीसे अवश्य कुछ पारितोषिक और हाथ लगैगा पवनजी तो न जाने किस कारण अंजनासे विमुख होकर स्वदेश गमन करते हैं फिर सिवाय विद्युत्प्रभुके और कोई ऐसा नहीं है कि जिसको महाराज महेन्द्रजी अपनी पुत्री देना स्वीकार करैं, यह समाचार अंजनासेभी तो कहना चाहिये. देखै अब उसकी क्या रुचि है रात्रिको जब मैंने विद्युत्प्रभुकी उसके सन्मुख प्रशंसा की तो चुप होरही देखैं अब क्या कहती है (प्रगट अंजनासे) अरी सजनी तैंने औरभी सुना पवनजी तो तुमसे विमुख होकर आदित्यपुर जाते हैं।

अंजना-(मिश्रकेशीसे क्रोधित होकर) चल परे हट. मेरे सामनेसे दूर हो (वसंतमालासे) हाय ! हाय !! (हाथ मलकर आसू बहातीहुई) अब क्या करूं ? क्यों प्राणनाथ मुझसे विमुख हुये ? कौनसा अपराध मुझसे बन पड़ा, मैं तो यह आशा कर रहथी कि बसतऋतुमें अपने स्वामीके साथ क्रीडा करूंगी यहाँ क्या हुआ किस दुष्टने उनको बहकादिया नहीं ! नहीं !! वे तो परम चतुर हैं और बुद्धिमान् हैं किसीके बहकायेमें नहीं आसकते कोई मुझसेही अपराध वन पडाहै, (मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरती है).

वसंतमाला-हैं ! हैं !! यह क्या होगया ? (अजनाके नेत्रोंपर जल छिडककर) उठो सजनी ! उठो ! तुम्हारा शरीर कुम्हलाया जाताहै, अग शिथिल हुआ जाताहै, उठो उठो, चेत करो, अपने शरीरको सँभालो. ऐसी व्याकुल क्यों होती हो ?

अंजना-(सचेत होकर) हाय ! अब मैं किधरकीभी न रही, अरी वसतमाला ! पिताजीको तो इस समाचारकी सूचना दे आ कुछ उपाय करें तो भला है वरन् मैं तो जीवनसे हाथ धोचुकी ।

मिश्रकेशी-अंजना ! इतना शोच काहेको करती है और यदि पवन जय तुझसे प्रीति नहीं रखता तो तू क्यों उनके लिये प्राण दिये देतीहै ? उससे अति रूपवान् और बहुतसे राजपुत्र हैं ।

अंजना-(क्रोधित होकर मिश्रकेशीसे) अरी दुष्टनी ! तू मेरे सन्मुख क्यो खडी है ? निकलजा. (वसंतमालासे) पिताजीसे यहभी कहदीजो कि मिश्रकेशीको मेरे निकट न आने दें (माथेसे हाथ लगाकर रोतीहुई) हाय ! मेरा कैसा भाग्य है पतिने अभीसे तिरस्कार कर दिया । चलू अपनी मातासे तो यह वृत्तांत कहदू ।

(सब जाती है)

तृतीय गर्भांक।

(स्थान महेन्द्रपुरके समीप मानसरोवरके तट पर राजा प्रह्लादके डेरे)

[पवनजय और प्रहस्तका प्रवेश.]

पवनजय–मित्र! अजनाका स्नेह दूसरे पुरुषसे है ऐसी कुशीला स्त्रीसे विवाह करना अयोग्य है. खोटे राजाकी सेवा करना, शत्रुके निकट जाना, मूर्खसे मित्रता करना और कुशीला स्त्रीसे प्रीति करना, यह सदैव दुःखके कारण हैं. ऐसी स्त्रीसे विवाह करनेसे कुँवारा रहना भला है, वरन् सदैव क्लेशमें दिन व्यतीत होते हैं, अब प्रातःकाल होगया इस नगरके समीपसे जहा ऐसी दुराचारिणी राजकन्या है अपने डेरे उठावो और आदित्यपुरको चलो अब यहां हमारा चित्त एक क्षण भी नहीं लगता, शीघ्रता करो और यहांसे चलो, मैंने सबको चलनेकी आज्ञा सुना दी है॥

प्रहस्त–अबला पर ऐसा क्रोध न चाहिये पहिले निश्चय तो करलो केवल एक सखीके वचन सुनकर ऐसा रोष करना अनुचित है, सेनाके लोग क्या कहेगे! पिताजीसे भी पूंछा है.

पवनजय–नही नहीं! मित्र नही! इस विषयमें मैं तुम्हारी सम्मति न मानूगा यदि मैं अपने कानोंसे न सुनता तो चाहे मान भी लेता, तुम जाकर पिताजीसे यह समाचार कह आवो.

प्रहस्त–(स्वयम्) देखिये क्या भविष्यत् है, कुँवरजीको कैसी कुमति सूझी है (प्रगट) अच्छा तो लो मैं जाताहू.

(जाता है)

पवनजय–(स्वयम्) चलूं मैं भी कटिबद्ध हो जाऊं.

(जाता है.)

[द्वारपाल और दो प्यादोंका प्रवेश]

एक पियादा–(द्वारपालसे) क्योंजी पवनकुमार कहां हैं, मुझे महाराजा महेन्द्रने भेजा है और कह दिया है कि पवनजी अभी चले न जावें मैं स्वयम् उनसे भेंट करनेको आता हू और महाराज प्रह्लाद कौनसे डेरेमें विराजते हैं।

दूसरा पियादा–मुझे भी महाराज प्रह्लादजीने इसी कारण पठाया है और वे भी स्वयम् कुँवर साहबसे भेंट करने आते हैं।

पहिला पियादा–(दूसरेसे) कहो जी तुम्हारे कुँवरजी विवाह करनेको तो आये और विना परणे अब क्यों जाते हैं ! आदर सत्कारमें तो हमारे महाराजकी ओरसे कोई कमी नहीं रही !

द्वारपाल–कमी क्यों होती, महाराजाओंका आदर सत्कार महाराजाही करसकते हैं, कुँवरसाहव अभी आते है।

दूसरा पियादा–कन्याकी सुदरताभी अद्भुत सुनी जाती है फिर न जाने पवनजय क्यों बिमुख होगये ह और चलनेकी तैयारी करदी है।

पहिला पियादा–ऐसा जानाजाताहै कि तुम्हारे कुँवरजी स्त्रीका सुख नहीं जानते वरन ऐसी सुदर दुलहिनको छोड कभी न जाते.

पवनजयका आगमन।

पवनजय–(द्वारपालसे) द्वारपाल ! सारथीसे कहो रथको यहां लावे।

द्वारपाल–जो आज्ञा कुँवरसाहव (जाता है)

दूसरा पियादा-(हाथ जोडकर कुँवरजीसे) महाराजने यह आज्ञा की है कि मैं आताहू अभी पवनजी चलनेको उद्यत न हों।

पहिला पियादा-श्रीमहाराज ! महेन्द्रपुराधीशने मुझे भी इसी प्रार्थनाके निमित्त महाराजकी सेवामें भेजाहै।

पवनजय-(दोनोंसे) अच्छा, तुम जावो हम अभी ठहरे हुए हैं (दोनों पियादे जातेहैं (स्वयम्) यह क्या आपत्ति है ? मेरा चित्त तो अब यहां एक क्षण भी नहीं लगता, पिताजी क्या कहते हैं ?

[द्वारपालका प्रवेश,]

द्वारपाल-कुँवरसाहबका जयजयकार हो ! द्वारपर रथ हाजिर है और महाराजाधिराजभी महाराज महेन्द्रजीको साथ लिये इधरही चले आते हैं, आपके मन्त्री और एक सज्जन और भी साथ हैं।

पवनजय-अच्छा तुम बाहर जावो.

द्वारपाल-जो आज्ञा महाराज (जाताहै)

[राजा महेन्द्र, प्रह्लाद, प्रतसूर्य और प्रहस्तका प्रवेश.]

पवनजय-(दोनोंके चरणोंको प्रणाम करके) आइये विराजिये।

प्रह्लाद-(पवनजयको गले लगाकर) पुत्र ! यह क्या विचारा है ? द्वारपर रथ काहेको खडा है ? तुम भी कटिबद्ध होकर कहांको तैयार हुए ? क्या बात है ? और इस रोषका क्या कारण है ? देखो तुम्हारी व्याकुलता सुन महेन्द्रपुराधीश अपना निजकार्य छोड दौडे आयेहैं, तुम बिना मेरी आज्ञा कोई कार्य नहीं करते आज क्या होगया ?

महेन्द्र–(पवनजयसे ठोढी पकडकर) हे कल्याणरूप ! तुम ऐसे अप्रसन्न क्यों हुए ? क्या मुझसे आदर सत्कार ठीक नहीं बन पडा ? हम सबकी तुम्हारी प्रसन्नताके साथही प्रसन्नता है ।

पवनजय–(हाथ जोडकर प्रह्लादसे) हे तात ! आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा परमधर्म है (दोनोंसे) परतु इस विषयमें आप दोनोंसे क्षमा मांगताहू और लज्जाके वशीभूत होकर विशेप नहीं कहसकता ।

प्रह्लाद–हे पुत्र ! मैं तुम्हारा पिताहू और तुम सदैवसे आज्ञाकारी प्रसिद्ध हो और महाराजा महेन्द्रभी तुम्हारे पितातुल्य हैं तुम्हारा धर्म यहीहै कि जो हम आज्ञा करैं चाहै उसमें तुम्हारी हानि भी हो उसका प्रतिपालन करो जिसमे तो महेन्द्रपुराधीश तुमसे विनयपूर्वक कह रहे हैं और मैंभी कोई हानि नहीं देखता. क्या तुमको हमारे मानका भी ध्यान नहीं; मैं वृत्तान्त सुन चुकाहू.

पवनजय–(स्वयम्) अब क्या करू. पिताजीकी आज्ञाका पालन न करू तो अधर्मी ठहरता हूं और आज्ञा मानताहूं तो संताप भुगतना पडता है. जो हो सो हो, अब तो मुझसे बडोंकी आज्ञा भंग नहीं की जाती और यदि मैं अजनासे विवाह न करूंगा तो महेन्द्र उसका किसी और राजपुत्रसे सम्बन्ध करदेगा और वहां वह सुखपूर्वक रहैगी इससे तो विवाह करलेनाही उत्तम है फिर तो वह दुष्टनी मेरे अधीन रहैगी और चाहे जैसा दण्ड उसे देसकूंगा (प्रगट) मेरी इच्छा इससमय औरही है परन्तु आपकी आज्ञा भंग करना महा अधर्मका मूल जानकर विवाह करनेको उद्यत होता हूं यहीं धर्म्मविवाह करा दीजिये ।

प्रह्लाद–पुत्रका यही धर्म है ।

महेन्द्र–तो बहुत अच्छा. विवाहकी लग्नभी आन पहुँची मैं पुत्रीको बुला आयाहूं, मानसरोवरके तटपर ही यह शुभकार्य करे देताहूं (स्वयम्) यह सम्बन्ध करनेयोग्य तो नहीं रहा परन्तु क्या करूं अंजना हठ करती है.

(द्वारपालका प्रवेश)

द्वारपाल–महाराजोंकी जय हो (महेन्द्रसे) श्रीमहाराजकी पुत्री एक सहेलीके साथ रथपर चढकर आई है.

प्रह्लाद–शीघ्र जाकर आदरपूर्वक लिवा लावो.

द्वारपाल–जो आज्ञा महाराजकी (जाताहै)

पवनजय–(स्वयम्) मैं तो प्रतिज्ञा करचुकाहूं कि उस दुराचारिणीका मुख न देखूंगा परंतु अब क्या करूं पिताजी नहीं मानते. देखिये कैसे जीवन निर्वाह होता है ।

(अंजना, वसंतमाला और द्वारपालका प्रवेश)

महेन्द्र–पुत्री ? आ तेरे स्वामी किसी कारण विमुख होकर जाते थे मैंने और प्रह्लादजीने विनय करके रोका है अब तुझे पवनजयको सौंपता हूं (अंजनाका हाथ पवनजयको सौंपाकर) इस समयसे तू इनकी अर्द्धाङ्गी हुई तन मनसे सेवा करियो अब मैं तुझे तेरे भाग्यपर छोडता हूं ।

पवनजय–(स्वयम)हा शोक ! जिस स्त्रीका मैं मुख देखना नही चाहताथा अब उसीका वज्रसमान हाथ स्पर्श करना पडा है.

प्रतसूर्य–(स्वयम्) इस सम्बन्धसे अजनाको सुख प्राप्त होना कठिनहै

प्रहस्त–(पवनजयकी ओर देखकर स्वयम) पवनजी तो ऐसी सुंदरी प्रियाकी ओर दृष्टिभी नहीं करते.

प्रह्लाद–(महेन्द्रसे) महाराज ! आपके नगरमें आकर थोडासा हमसे आपका अनादर बनगडा, क्षमा कीजियेगा.(अजनाको देखकर स्वयम्) जोडा तो यथायोग्य है, पवनजय ऐसी रूपवतीसे क्यों विमुख हो चला था, चलो विवाहतो होही गया यह दोनो रूप और गुणमें समान हैं शनैः शनैः परस्पर प्रीति होही जावेगी ॥

महेन्द्र–(प्रह्लादसे) तो अब मुझे आज्ञा दीजिये यह पुत्री आपके आश्रय है, सखी वसन्तमाला तू भी अजनाके साथ ही रह ॥

वसन्तमाला–यह तो मैं अन्तःकरणसे चाहती हूं ॥

महेन्द्र–(अजनासे) पुत्री किसी कविका वचन है ॥

कवित्त।

"नीर विना कञ्ज जैसे चक्षु विना खञ्ज जैसे,
स्वातिके विहीन ज्यों पपीहा परेशान हो ।
ज्ञान विना सन्त विना ध्यानके महन्त जैसे,
जैसे घरघोर बिना मोर भी हैरान हो ॥
दया विना धर्म जैसे क्षमा बिना कर्म जैसे,
चन्द्रके विहीन ज्यो चकोरकी प्रहान हो ।
जैसे पतिव्रत विना नारीका विनाश होय,
पतिव्रत धर्महीसे नारी भी प्रधान हो" ॥

विशेष मैं क्या कहू तू आपही ज्ञानवान् है, पतिव्रत धर्म मनको वश रखनेसे ही फल सकता है प्रेरणासे नहीं ॥

पवनजय–(स्वयम्) आप कुछही उपदेश करे यह तो पतिव्रता हो नही सकती, हे देव ! कुशीला स्त्रीसे किसीका पाला न पडे ॥

प्रह्लाद्–मैं आपके अनुग्रहका धन्यवाद देताहू ॥

महेन्द्र–आप बडे हैं अब आज्ञा दीजिये. (जाता है)

अंजना–(स्वयम्) अब मेरा चित्त प्रसन्न हुआ प्राणपतिके दर्शन मात्रहीसे मेरा जीवनमूल है (हौले वसन्तमालासे) तू मेरी प्यारी सखी है ॥

प्रह्लाद्–(द्वारपालसे) अब चलनेकी तैयारी करावो प्रसन्नतापूर्वक गमन करैं ॥

(सब जाते हैं)

पटाक्षेप ।

अंक ३.

प्रथम गर्भाङ्क ।

(स्थान आदित्यपुरमें अंजनासुन्दरीका भवन)

(मदनिका और वसन्तमालाका प्रवेश.)

मदनिका–अरी ! तू तो अंजनाके संग बाल्यावस्थासेही रही है कुछ इसका कारण तू भी जानती है पवनजय हमारी सखीसे क्यो रूठे हुये रहते हैं, जिस दिनसे विचारी यहां आई है अलग इस भवनमे पडी रहती है, उसने श्वसुरालका सुख लेशमात्र भी नहीं जाना, यदि पवनजयको इसी भाति योगियोंकी नांई रहना था तो काहेको विवाह किया ? और एक विचारी

दीन अवलाको दुःख दिया, वहुत दिन व्यतीत हुए अंजना जबसे यहां आई है मैं भी उसके पासही हू कोई दुराचार आज पर्य्यन्त उसकी ओरसे जान नहीं पडा, वह तो परम सुशीला और सती स्त्री है न जानें उसका भाग्य ऐसा क्यों है कि ऐसे निटुरके पाले पडी कि जो कभी बात भी नहीं पूॅछता वरन् उसके नाममात्रसे घृणा करता है, माता पिताने वहुतेरा समझाया परन्तु चिकने घडेकी नाई उसपर बूंद नहीं ठहरती, जैसे पके फलको वृक्ष त्याग देताहै ऐसे ही पवनजीने अजनाको छोड रक्खाहै, सत्यहै पहाडकी हरियाली दूरसेही अच्छी मालूम होतीहै निकट जानेपर ऊंच नीच प्रगट होतीहै ।

वसंतमाला–वहिना! मेरी वुद्धि भी इस विषयमें चकित है कुछ काम नहीं देती, वहुतसा यत्न करती हूं परन्तु एक नहीं चलता, हा खेद! हा खेद!! अव यह ब्यौरा हमारी सखीकी प्योसार तक पहुॅच गया है कहो उसके माता पिता और भ्राताओंको जिनमें कि अजना कमलपुष्पकी नाई युवती हुई है कैसा क्लेश प्राप्त हुआ होगा, परन्तु विचारे अव करैं क्या? हाथ मल मल कर वैठ रहते होगे, पवनजयने तो विवाह समयही अपनी निस्पृहता प्रगट कर दी थी परन्तु भविष्य ऐसा ही था, धन्यहै अजनासुन्दरी इतने दिवस व्यतीत होनेपर भी अपना सतीधर्म नहीं त्यागती और अन्तःकरणसे पवन-जयके ध्यानमें ही मग्न रहती है, सुशीलाका यही धर्म है, मणि यदि सर्पके पास है परन्तु उसको कलंक नहीं लग सकता ।

दोहा–सज्जन प्रीति वियोगते, कवहुॅ न होत विनाश ।
चन्द्र ढक्यो घनसे तदपि, करत कुमोद प्रकाश ॥

अरी ! यह कहीं उसके मित्रका तो कौतुक नहीं है, कदाचित् पवनकुमारके चित्तमे हमारी सखीकी ओरसे किसी भांति अरुचि उत्पन्न करदी हो ॥

वसन्तमाला-नहीं नहीं कदापि नहीं. यह सम्भव नहीं प्रहस्त ऐसा पुरुष नहीं है, मैंने स्वयं कई बार देखा है कि उन्होंने पवनजयके सन्मुख अजनाकी प्रशसा की और उनको वहुत कुछ समझाया, परन्तु पत्रके ऊपर जलकी बूद नहीं ठहरती और आरसीपर मोती नहीं रहसकता. न जाने पवनजीको क्या होगया है जहां उनके सन्मुख किसीने अजनाका नाम भी लिया और वह क्रोधित हुए, पवनजीके महलमें जो इधरकी ओर झरोखा था वह भी उन्होंने वन्द करा दिया है ॥

मदनिका-हाय ! इस दुखियाकी कैसी प्रारब्ध है पतिके जीते हुए वैधव्य अवस्था भोग रहीहै, चिंताने उसके तनुकी क्या अवस्था करदी है ॥

वसन्तमाला-

दोहा-"नवयौवन कोमल जिया, चिंता सही न जाय।
जाते पत्थरका हिया, क्षार क्षार ह्वै जाय" ॥

(अजनाका प्रवेश)

वसन्तमाला-(अजनासे) हे अनिंदिते ! तैंने अपने शरीरकी यह क्या दशा बनाई है ? न दिनको आराम लेतीहै, न रात्रिको विश्राम करती है ! निरंतर आंसुओंसे मुख धोया करती है, शरीर मलीन और तनु क्षीण होगया है, निश्चल लोचन सर्वचेष्टारहित बैठी रहती है, समस्त अग दुर्बल होगया है, चार पैंड चलनेसे झोके खा खाके गिर पडती है, सर्व आभूषणोंका परित्याग करदिया है, गोरे २ कपोल आंसुअनकी धारा बहबहकर कुम्हला गये हैं ॥

अंजना–(आंखोंमे आंसू भरकर ठंढी सास लेती हुई) अरी सखी ! तू क्या नहीं जानती, हाय मेरा कैसा भाग्य है, अब कहा जाऊ, और किससे अपना दुःख कहूं ? धोबीका कुत्ता घरका न घाटका, माता पिता न जाने क्या सोचते होगे वे अवश्य यही कहते होगे कि कुछ हमारी कन्यामें ही दूषण है जो उसका पति ग्रहण नहीं करता, अब मैं कहीं की न रही, क्या कहूं कुछ उपाय सूझ नहीं पड़ता, न जाने प्राणनाथ क्यो विमुख हो रहेहैं, भीतपर उनका चित्र खींच खींचकर अपने मनको समझाया करतीथी अब हाथोमे श्रद्धा ही नहीं रही, यह वस्त्र भी जो तनपर है भार मालूम होतेहैं, शारीरक सुखसे मनका सुख मुख्य है और मनके सुखी होनेसे शारीरक सुख भी प्राप्त होसकता है परंतु केवल शारीरक सुखसे मनका सुख प्राप्त नहीं होता और बिना मनके सुखी हुये चित्त प्रसन्न नहीं होता. मनुष्य चाहै कैसीही दीन अवस्थामे रहै परतु आपसकी मित्रतासे चित्त प्रसन्न हो तो वह दु:ख दुःख नहीं भासता. मैं कैसे अपने मनको प्रसन्न कर सकती हू–रोरो-कर आसुओंसे अपना जलता कलेजा ठंढा करलेती हू, और अपनी प्रारब्धको दोष दिया करती हू, किसी भाति जी नहीं लगता, शीतल चन्द्र-किरण भी अग्नि समान भासती हैं (रोती है) ।

वसंतमाला–हे सखी ! तू सत्य कहती है चंद्रमा वियोगिनीको और सूर्य सयोगता स्त्रीको कभी प्रिय नहीं होता, धैर्य धरो धैर्य धरो ।

अंजना–(रोती हुई) हे नाथ ! मैंने क्या ऐसा अपराध कियाहै ? आपका मनोज्ञ अग मेरे हृदयमे बस रहा है और आपका चित्र निरतर मेरी आँखोंके सन्मुख रहता है, सूर्य बिना दिनकी शोभा नहीं होती और चद्रमा बिना रात्रि अच्छी नहीं लगती, ऐसे ही बिना आपकी कृपाके मेरी शोभा

नहीं है, हे स्वामी ! आपने मेरा तिरस्कार किया इसका कुछ शोच नहीं, क्योंकि पतिका स्त्रीपर सर्व प्रकारसे अधिकार है. चाहे जैसे रक्खे--परंतु शोच केवल इतना ही कि मैं अपना धर्म न निबाह सकी, अब मैं तो चंद्रमा और चादनीकी नांई अपनेको आपके अधीन करचुकी यदि यहां मिलाप न हुवा तो यह आकांक्षा है कि परभवमे आपकी दासी होकर सेवा करूं (मूर्च्छित होकर गिरतीहै)।

मदनिका--(जल छिडककर) हे सजनी ! चेत करो चेत करो जो हमारे योग्य कार्य है आज्ञा करो हम सर्व भाति तत्परहैं अपने बिखरे हुये बालोको सँभालो ।

अंजना--(सचेत होकर) आली ! अब मेरा तन मन मेरे वशमे नहीं रहा (मस्तकपर हाथ रखकर रोती हुई) ।

दोहा--" कहा भयो दुलहन बनी, देख्यो मुख भरतार ।
लिख्यो कर्ममे दुःख है, कौन सकत है टार ॥
क्यों माता बोझन मरी, राख उदर नव मास ।
क्यों पोषन मेरो कियो, देखनको यह त्रास " ॥

वसंतमाला--हे मनोरमे ! यह क्या करती है. रोने विलाप और शोच करनेसे क्या होगा ? अपनी देहको दुःख देले--आर्तध्यान केवल बधका कारण है--पवनजीको बडा गुणवान् और चतुर सुना करती थीं, ऐसी सुंदर और भोरी स्त्रीको न जाने क्यो तजा है, हे अजने ! तुझे तो अत्यत दुःख है ही परंतु तेरी यह मंददशा देखकर हमारी भी छाती फटी जाती है, तू अपने माता पिताके घरमें सब ही की प्यारी थी. और बडे लाड़ प्यारसे तेरा पोषण

कियागया, हां शोक ! ! अब यहां यह दुःख तुझे सहना पडताहै, पवनजीकी बुद्धि और कार्यमें तो वडी प्रबल है परतु न जानैं इस विषयमें क्यों भग हो रही है, जानाजाता है कि यह किसी और का कौतुक है ।

अंजना--अरी बावरी ! तू उनको क्यो दोष देतीहै ? यह मेरेही अशुभ कर्मका फल है, सुवर्णको पानीमें रखनेसे उसपर काई नहीं चढती और चदनमें सर्प लिपटे रहनेसे वह विषधारण नहीं करता ।

दोहा--"दुःख अरु सुख सब होतहैं, कर्म्मनके अनुसार ।
उरझत सुरझत है ध्वजा, रहत वायु आधार" ॥

इसमें किसीका क्या दूपण है, देखैं वह दिन कौनसा होता है कि प्रियतमके संग रहस करूं और आनद मानू ॥

मदनिका--(हौले बसतमालासे) यदि अंजना एकपत्र पवनजयको भेजे तो कैसा ?

वसंतमाला--(हौले मदानिकासे) है तो अतिश्रेष्ठ परतु जो उसके चित्तमें प्रीतिही नहीं तो पत्रसे क्या होगा ?

मदनिका--(हौले वसंतमालासे) कदाचित् इस दीन दुखियाके लेखको देखकर कुछ उनका हृदय कोमल होजाय ।

अंजना--क्या कह रही हो कुछ मुझसेभी तो कहो ।

मदनिका--सखी कहते हुये डर लगताहै ।

अंजना--कुछ भय मत करो न जाने मेरी आपत्तिका ओर कहांतक है, यदि मेरे उपयोगकी कोई वात है तो निस्सदेह कहो, मेरी बुद्धि आज दिन स्थिर नहीं है ।

मदनिका—विना पृथ्वी खोदे जल नहीं निकलता और व्यवसाईजन निराश होकर नहीं वैठते कुछ उपाय करना चाहिये. नीमका वृक्ष ज्यो ज्यों वढता है कटु होताजाता है, चिंताको छोड़ो और उपाय करो चिंतामें कार्यकी सिद्धि नहीं होती और शरीर कृश होता, जाताहै, चिंताकी ज्वाला भीतरही भीतर शरीररूपी वनको धुंधकाया करती है और सब जलकर केवल अस्थि शेष रहजाती है।

दोहा—"चिंता चिताके कार्य सम, केवल अंतर येह।
चिता जरावत मृतक तनु, चिंता जीवत देह" ॥

अंजना—(रोतीहुई) अरी ! आजदिन ठीक यही व्यवस्था मेरी होरही है,वताओ वह उपाय क्या है जिससे चिंता दूर हो ?

मदनिका—हे सुखदा ! जवतक उपाय होसकै निराश न होना चाहिये यदि तू अपने हस्तकमलसे लिखकर एक प्रेमपत्रिका पवनजीकी सेवामें प्रेरण करे तो संभव है कि, उनका चित्त कोमल हो।

अंजना—अरी ! कहीं मृगतृष्णासे प्यास नहीं वुझती.

वसंतमाला—तो हानि भी क्या है ? एक उपाय यह भी सही, अरी देख तेरा कोमल शरीर इस क्लेशके कारण मार्गशीर्ष मासकी मजरीकी नांई जर्जरीभूत हुआ जाता है।

अंजना—(लेखनी आदि लेकर) अच्छा तो तेराभी कहना करूंगी, आंखोंमे तो आंसू भरे आतेहैं और हाथसे लेखनी गिरी पड़ती है।

वसंतमाला—सखी चित्तको स्थिर करके पवनजयको जिसे तू अवभी अपना प्राणप्यारा समझ रही है अपनी प्रीति इस प्रेमपत्रके द्वारा दिखला,

मनुष्यका मुख्य कर्तव्य उपाय करना है, उपाय करते हुये भी कार्य सिद्ध न हो तो प्राचीन अशुभ कर्मोंका उदय जानना चाहिये।

अंजना–(आँसू रोककर लिखती हुई, ठढीसांस लेती है फिर आसू भरकर) अरे मन ! ऐसा अधैर्य क्यों होता है ?

मदनिका–सखी ! आसुओसे तुम्हारे रसीले नेत्रोकी ज्योति मंद होरही ह धैर्य धरो और पत्रिका लिखो.

अंजना–(पत्रिका लिखकर) तो अब इसको प्राणप्यारे तक कौन पहुँचावे

मदनिका–इस सेवाको मैं पूरी करूगी।

अंजना–(पत्र देतीहुई सखियोसे)

(ठुमरी राग खम्माच)

"जावोरी पियाको मनावोरी मोहिं उन बिन कछू ना सुहाय,
कोई समझावोरी ॥ टेक ॥
हँस मुसक्यान करौ तुम वा सँग. पइया परौ हाहा खावोरी।
निकस्यो जाय जिया बिन उनके, किसविधि मन हरषावोरी।
विरह व्याकुल मैं भईजातहौं, यह नल क्यों न बुझावोरी।
पवनपियाको बेग बुलावो, आनँद फेर रचावोरी"।

(मदनिकासे यदि कुछ होसकै तो उपाय कर.)

मदनिका–(पत्र लेकर) अच्छा जातीहूं देखिये पाषाणवत् हिया पिघलता है या नहीं–(जाती है)

[प्रहस्तका प्रवेश.]

प्रहस्त–(अजनाको देखकर वसतमालासे) अरी सखी ! तैंने अंजना सुदरीकी यह क्या दशा करदी है इनका शरीर कैसा क्षीण होरहा है।

वसंतमाला—आपके मित्रके वियोगने हमारी सखीकी यह दशा करदीहै

प्रहस्त—क्या करू ! कुछ वश नही चलता । पवनजीको बहुतेरा समझाता हू परन्तु एक नही सुनते.

वसंतमाला—अजी ! आप उनकी अप्रसन्नताका कुछ कारण भी जानते हैं ।

प्रहस्त—कारण तो सब कुछ जानता हूं परन्तु उपाय कुछ नहीं (स्वयम्) इस स्त्रीकी परीक्षा तो करनी चाहिये कि वास्तवमें इसके खोटे आचरण हैं अथवा पवनजयकाही खोटापन है ।

वसंतमाला—यदि आप कारण जानते हैं तो इस क्लेशको निवृत्त कीजिये. राजहस दूध और जलको पृथक् पृथक् कर देताहै. वह क्या कारण है प्रगट तो कीजिये उसीके अनुसार उपाय किया जावै ।

प्रहस्त—वह केवल तुम्हारी सखीसेही कहने योग्य है ।

अंजना—(क्रोधितसी होकर वसतमालासे) अरी ! अरी ! तू क्या कर रहीहै मैं कुछ नहीं सुना चाहती, मैं पराई स्त्री हू परपुरुषसे एकान्तमें वार्तालाप नहीं कर सकती, स्वाधीन नहीं हू, मेरे तनुपर मेरा अधिकार नहीं, कर्मानुसार स्वतः दुःख सुख होते चले जायेंगे किसी दिन प्राणपतिसेही इसका कारण पूछ लूगी ।

प्रहस्त—(स्वयम्) इस स्त्रीके पतिव्रता होनेमें कोई सन्देह नही. जिस स्त्रीको इतना ज्ञान है वह कदापि व्यभिचारिणी नहीं होसकती ।

वसन्तमाला—(प्रहस्तसे) महाराज ! हमारी सहेलीको अपने दुःखमें कुछ नहीं सूझती, एक प्रेमपत्रिका अभी अजनाने अपने प्राणप्यारेको भेजी है, यदि होसकै तो समय पाकर कुछ उपकार कीजियेगा ।

प्रहस्त–अच्छा तो अब मैं पवनजयके निकट जाता हू (चला गया)।

वसंतमाला–(अजनासे) सखी! इस थोडेसे परिश्रम सेही तेरे विथुरेहुए केश पसीनेसे नहा गये हैं; चल कुछ विश्राम करले।

(दोनो जाते हैं)

द्वितीय गर्भांक।

(स्थान पवनजयके महलकी ड्योढी)

[पवनजय प्रहस्त ओर द्वारपालका प्रवेश.]

पवनजय–लकापति रावण और राजा वरुणमें युद्ध उपस्थित हुआ है और वरुणने रावणके बहनोई खरदूपणको पकड लिया है, अब रावणको यह भय लग रहा है कि कहीं खरदूपणको मार न डाले, इस लिये पिताजीके पास पत्र भेजा है और लिखा है कि यदि सूर्य तेजका पुज है तथापि अरुण सरीखे सारथीकी इच्छा रखता है और पिताजीसे सहायता मागी है।

प्रहस्त–जेवड़ी जल जातीहै परन्तु ऐंठन नहीं जाती, रावण ऐसे समयमे भी अभिमानको नहीं त्यागता।

पवनजय–मित्र! जो खोटी प्रकृति मनुष्यकी होजाती है वह जन्मभर नहीं जाती, पिताजी स्वयम् सेना लेकर जानेको तत्पर हुए थे परन्तु मैंने उनकी वृद्धावस्थाका विचार करके और अपना धर्म जानके निवेदन किया कि "सन्तानका पालन पोपणादि माता पिता हर्षपूर्वक इसी कारण करते हैं कि बुढापेमें उनकी चाकरी करै, मेरे होतेहुए आप क्यों परिश्रम करतेहैं" उन्होंने मेरी प्रार्थनाको स्वीकार किया, अब मैं सेना लेकर रावणकी सहायतार्थ पयान करूगा, कहो मित्र! तुम साथ चलोगे अथवा नहीं?

प्रहस्त--वाह ! यह आपने अच्छा प्रश्न किया, इस नगरसे बाहर तो आपको अकेला जानेही नहीं देता अब सग्राम समय आपका साथ कैसे छोड सकताहू ?

पवनजय--अच्छा; तो आज हम नगरसे प्रस्थान करैगे और रात्रिको तडागपर विश्राम लेके लकाको पयान करैंगे।

द्वारपाल--महाराज कुँवरका जयजयकार हो एक स्त्री जो पहिनावसे दासी जान पडती है यहा आई है और कहती है कि मुझे पवनजीके सन्मुख ले चलो और एक पत्र भी उसके हाथमें है, मैंने उधर बैठादीहै।

पवनजय--अरे ! उसका नाम क्या है ? कहांसे आई है। कौन है ? (प्रहस्तसे) कोई दूती उस दुराचारिणीकी न हो ?

प्रहस्त--(स्वयम्) होगी तो अवश्य मदनिकाही परतु बुलानी तो चाहिये।

द्वारपाल--महाराज ! वह अपना नाम और पता नहीं वतलाती, केवल यही प्रार्थना करतीहै कि मुझे महाराज कुँवरके सन्मुख लेचलो।

प्रहस्त--(पवनजयसे) क्या हानि है बुलातो लीजिये, न जानें कौन दुःखिया है क्या प्रार्थना करने आई है।

पवनजय--(द्वारपालसे) अच्छा जाकर लिवालावो।

द्वारपाल--जो आज्ञा महाराज ! (जाता है)

(आगे आगे द्वारपाल और पीछे पीछे दासीका प्रवेश.)

दासी--(पवनजयको पत्र देतीहुई) महाराज ! यह आपकी--

पवनजय--(पत्र लेकर, दासीको देख और क्रोधित होकर अरे ! इस दुष्टनीको निकालो ! निकालो ! ! जल्दी निकालो ! ! ! मेरे सामनेसे मैं ऐसी

दुराचारिणीकी दासीका भी मुख नहीं देखना चाहता (प्रहस्तसे) क्यों मित्र मैंने जो पहिले कहाथा वही हुवा (पत्रको फेंककर, द्वारपालसे) लेजाओ ! इसे ले जावो सामनेसे। मैं तो लंकापति रावणकी सहायतार्थ युद्धमें जानेको तत्पर हूं. तुमने पहिलेहीसे यह क्या अशकुन करदिया ? स्त्रीपर शस्त्र चलाना शूरताके विरुद्ध है बरन् मैं अभी इसका प्राण हर लेता.

प्रहस्त--(दासीसे) जारी जा ! तू यहा क्यों अपमान कराने आई है (पवनजयसे) क्रोधको शांत करो स्त्रियोपर इतना क्रोध नहीं करते. वह विचारी निरपराधी है, प्रेरित पत्र लेकर आई है, बैरीके दूतकाभी निरादर नहीं किया करते।

द्वारपाल--(दासीसे) चल री ! तैंने मुझसे भी बुरा भला कहलवाया भवनसे बाहर हो।

दासी--(स्वयम्) अब हमारी सखीको क्या आशा रखनी चाहिये, कहीं शिलासे तेल नहीं निकलता और विनयसे पत्थर नहीं पिघलता (रोतीहुई जाती है)

पवनजय--मित्र चलो अब हम संग्राम के लिये सज्जित हो आवें !

(दोनों भीतर जाते हैं)

द्वारपाल--(स्वयम्) सत्य है जिस गृहमें स्त्री पुरुषकी परस्पर प्रीति नहीं होती वहां गृहस्थाश्रमका सुख भी प्राप्त नहीं होता और सदैव क्लेशके कारण कुलकी वृद्धि भी नहीं होती, अब दैव जाने इन दोनोमेंसे किसमें दूषण है परंतु पवनजयको तो इतना ध्यान भी नहीं और कभी अपनी स्त्रीका स्मरण भी नही करते परंतु अंजनाकी ओरसे सदैव उनकी प्रसन्नताके उपयोग होते रहते हैं इससे ज्ञात होता है कि यह दूषण हमारे कुँवरजीकाही है, पतिव्रता

स्त्रीको यदि पति ग्रहण न करे तो वह पातकी होता है और स्त्री अपने योग्य वर पाकर उसकी सेवा तन मनसे न करे तो वह भी निंदाके योग्य है. सुशी-लाके निरादर करनेसे केवल उसको और उसके माता पिताको ही खेद प्राप्त नही होता बरन् उसके पतिको भी उसका पतिव्रत निश्चय हो जानेपर कम पश्चात्ताप नहीं उठाना पड़ता।

(अजनाका बाल बखेरे और हाथमे क लिये हुये प्रवेश)

अब यह और क्या नई आपत्ति चली आती है अभी तौ कठिनतासे पिंड छूटा है।

अंजना--(द्वारपाल से) महाराज कुँवरके युद्ध क्षत्रको प्रस्थान करनेमें कितना विलम्व है ?

द्वारपाल--महाराज कुँवर तौ तैयार हो चुके हैं अभी बाहर आते हैं आप कौन हैं? कहाँसे आगमन हुवा ? कुँवर साहवसे क्या प्रयोजन् है ?।

(वसतमाला और मदनिकाका प्रवेश)

वसंतमाला--अरी अजने ! तू काहेको अपना अपमान कराने यहां आई है।

मदनिका--अरी ! अपने भवनको चल यहां क्यो क्षति कराने आई है।

द्वारपाल--(स्वयम्) हाय ! इस विचारी की यह क्या दशा होगई मैं तो पहिचान भी न सका सत्य है पतिके अनादरसे स्त्रीका कहीं ठिकाना नही इसकी सास श्वशुरभी सुधि नहीं लेते यह तो वडी आपत्ति आई आज पूरा प्राण सकट है (प्रगट अजनासे) महारानीजू ? मेरा अपराध क्षमा हो मैं आपका दासानुदास हूं. यह अवसर आपके यहां ठहरनेका नहीं (मदनिकासे) अरी ? तू क्या पवनजीकी प्रकृति नही जानती ! इन्हे भवनको लेजा।

मदनिका--(अजनासे) हे सखी ? पवनजय महा कठोर निर्दयी है उसे तेरी यह दशा देखकर भी तनक दया न आवैगी अपने भवनको सिधार क्यों मान भग कराती है ?

दोहा--"जा मनको मन मानतो, मनमे प्रिय मन सोय।
मान न मानै मित्रके, मन मैलो नाहिं होय" ॥

अंजना--यदि प्राणनाथने मेरे पत्रका और तेरा अनादर किया परंतु जब तैंने उनके युद्ध क्षेत्रको प्रस्थान करनेका समाचार सुनाया तो न रहा गया, तू उधर गई और मैं अपने प्राणप्यारेको विजय अर्थ रणककण बांधने और कुछ प्रार्थना करने गिरती पडती यहांतक आई हू ।

दोनों सहेली--आली ! हमको भय है कि वह अवश्य तेरा अनादर करैंगे-हम तुझे भवनमें न पाकर दौडी आई हैं और प्रार्थना करती हैं कि लौट चलो अपमान मत सहो ।

अंजना--अब यह कदापि न होगा तुम शोच मत करो पवनजय मेरे प्राणपति हैं. मेरा अनादर करैंगे तो कुछ हानि नहीं उनके दर्शन तो कर लूगी।

द्वारपाल--(स्वयम्) सच्चा स्नेह इसीको कहते हैं, क्या पवनके वेगको कोई रोक सकता है ? न जानैं इस विचारी अवलाको कुँवरजी क्यों दुःख देते हैं ?

वसंतमाला--(मदनिकासे) किसी कविने कहाहै ।

दोहा--"रुकै न काहू जतन सों, जाहि प्रीतिकी बान ।
भौंर न छोडै केतकी, तीखे कटक जान" ॥

अरी ! यह न मानैंगी, पतग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करता है।

द्वारपाल--(स्वयम्) अब क्या करू ? महाराज कुँवरके आनेका तो समय होगया यह स्त्रियां यहासे टलती नहीं. देखिये आज क्या होता है. यह

राजकुँवारी है, अपमान पूर्वक हटा नहीं सकता, स्त्री पुरुष हैं काळ पाकर एक होगये तो मेरी दुर्दशा होगी।

[पवनजय और प्रहस्तका कटिबद्ध होकर भीतरसे आगमन.]

पवनजय–(अजना और उसकी सहेलियोंको द्वारके निकट देखकर क्रोध पूर्वक) अरे कोई है ! इन दुष्ट दुराचारणियोको यहांसे निकालो ! जल्दी ! जल्दी ! ! इनको जल्दी निकालो !

अंजना–(ढिढककर रोती हुई) हे नाथ ! पानी ठंढा हो अथवा गर्म आग बुझानेको एकसा है, आपके क्रूर वचन भी मुझे अतिप्रिय हैं । हे स्वामी ? यहां कभी कभी आपका दर्शन करके तोभी अपने मनको सन्तुष्ट करलेती थी और आशा करके जीती थी, अब आप युद्धक्षेत्रको पधारते हैं मैं कैसे जीती रहूगी ? हे प्राणेश ! आपने प्रस्थान समय पशु पक्षियों परभी दयाभाव दरशाय मुझ आतुर दुखियाको घोर कष्टमें छोड कहां जाते हो ! मेरा चित्त तुम्हारे चरणारविंदमें लगा है. हे भगवन् ! अपने मुख पंकजसे वचनरूप अमृत कुछ इस दासीकोभी दीजिये. आपके विमुख होनेसे मुझे सारा जग शून्य भासता है कोई इस दुखियाको शरण नहीं देता।

पवनजय–(क्रोधित होकर) हे दुरीक्षण ! मेरे सामनेसे चली जा तेरा दर्शन उल्लूकके समान है तैंने बडे कुलकी पुत्री होकर अपने माता पिताको भी कलक लगाया।

अंजना–(रोतीहुई) हे नाथ ! मैंने तो कोई अपने जान ऐसा कार्य नहीं किया, आपके तीक्ष्ण वचन भी इस समय ऐसे प्रिय जान पडतेहै जैसे प्यासे पपीहाको मेहकी बूंद, परन्तु अब तो आप सग्राममे जाते है मैं दर्शनोकी भी प्यासी रहूगी, मेरे हाथसे यह रणककण तो बॅधवा लीजिये.

पवनजय–(क्रोधसे) अरे ! कोई इस दुराचारिणीको मेरे सामनेसे नहीं निकालता। विदा करती बेर माता पिताने तो अपशकुनके कारण आंसूभी नहीं डाले और यह रोती हुईही सन्मुख चली आई (प्रहस्तसे) मित्र ! यहांसे लौट चलो बडा अपशकुन हुआ दूसरे द्वारसे चलैंगे।

प्रहस्त–(स्वयम्) सत्य है मनुष्यका हिया जब नरम होता है मोमसे जियादह पिघल जाताहै और वही हिया जब कठोर होता है पत्थरसे विशेष होजाता है और अपनेही प्यारे और सजातीको जिसके साथ कभी अटल प्रेम था मारनेपर तत्पर होजाता है।

[पवनजय और प्रहस्त लौट जातेहैं.]

अंजना–(ठंढी श्वास लेतीहुई) हाय ! क्या यह दिनभी मुझ अभागिनी को देखना था (मूर्च्छित होकर गिरती है)

वसन्तमाला–

दोहा–"हाय दई कैसी भई, अनचाहतके सग।
दीपकको भावे नहीं, जर जर मरत पतग" ॥

(अजनाके मुखपर जल छिडककर) अरी दुखिया ! उठ चेतकर. तेरे कोमल अंगमें कंकण चुभते हैं, चकोरकी प्रीतिको चन्द्रमा नहीं जानता और कमलके मनकी पीर सूर्यको माळूम नहीं होती।

"सर्वश त्याग परी तिहिके वश,
छोंडत नहिं दिनराती।
ऐसी प्रीति मीनकी देखत,
जलकी फटी न छाती।

दोहा--यदपि हेत सुन्दर कमल, उलटो तदपि स्वभाव।
जो नित पूरण चन्द्र सों, करत विरोध बनाव" ॥

अंजना--(सचेत होकर) हाय ! क्या अब भी यह जीव इस देहसे नहीं निकला. मैं तो समझी थी कि इस दुःख से पीछा छुट जायगा तैंने फिर सचेत करली (रोती है) इस जीनेसे तो मरजानाही भला है।

मदनिका--आली निराश मत हो समय सदैव एकसा नहीं रहता, चलो भवनको सिधारो.

दोनों सहेली--(अंजनाके हाथ थामकर) हौले हौले चलीचल. अब विशेष यहां ठहरना उचित नही।

अंजना--(रोतीहुई) अभी तुम मेरा दुःख निवृत्त होना नहीं चाहती भवनके पत्थरोंसेही शिर फोड़ूगी।

(सब जाते हैं)

(तृतीय गर्भांक)

(स्थान आदित्यपुरके समीप रत्नसागरके तटपर वृक्षोंकी सायामें पवनजयके डेरे सागरके तटपर पवनजय कुरसीपर विराजित हुये.)

पवनजय--(स्वयम्) अहा ! यह स्थान कैसा रमणीय है, पानीपर होकर कमलोंकी वासना लेती हुई शीतल मद सुगंध पवन चली आती है, किनारेके वृक्ष हौले हौले झोंके खा रहे हैं, जलकी लहरके ऊपर जलपक्षी किलोल करतेहुये कैसे सुन्दर जान पडते हैं, इस तडागका जलभी क्या

स्फटिक मणिके समान है नानाप्रकारके कमलोंपर भ्रमरोंके झुडके झुड सुगंध ले रहे हैं. अरे ! रे ! ! रे !!! हाय ! हाय !! उस चकवाको क्रौंचपक्षी भक्षण कर गया हाय ! हाय !! इस विचारी चकवीकी क्या दशा होगई है. वियोगसे व्याकुल उडती है और फिर गिर पडती है, सूर्य अब अस्ताचलको जाताहै-- हाय ! हाय ! ! तडप तडप कर उसकी क्या गति होगई है, नेत्रोंसे मेघकीसी झडी लग रही है, अपने प्रतिबिंबको जलमें देख प्रियतम समझकर उसके निकट जानेको जलके ऊपर पख फटफटाती फिरती है, अब थककर शोकवती हो कमलके पत्तेपर बैठ गई है, फिर उडी, अबके उस ऊचे वृक्षपर बैठकर चहूँ-ओर आख फाड फाड अपने प्यारेको देख रही है, हाय बिचारी विकल होकर पृथ्वीपर गिर पडी, अब फिर कमलके पत्तेपर जा बैठी है, पुष्पसे रगड कर अपने शरीरकी रज पोंछ रही है, चन्द्रमा निकलता आता है, कैसी शीतल चांदनी है, इस बिचारी चकवीको यह भी दावानल समान है, पति बिना इस दुखियाको कोमल पल्लवभी खड्गकी धार समान भासते हैं (आखोंमें आंसू भरकर) मेरा विवाहभी मानसरोवरके तटपर हुआथा, हाय ! उस बिचारी दुखियाकी जिसका मैं ऐसा अनादर करके आया हू क्या दशा होगी ? प्रिय-तमका वियोग पतिव्रता स्त्री से नहीं सहा जाता मैं कैसा कठोर हृदय निर्दयी हूँ जो अपनी प्रियाको ऐसा कष्ट देता हूं ? उस बिचारीका क्या अपराध है ! यदि विद्युत् प्रभुकी प्रसशा की तो उसकी दासीने की। स्वयम् प्राणप्यारी ने तो कुछ कहाभी नहीं हा शोक ! इतने दिवशसे मेरी बुद्धि कहा चली गई चकवीसे एक क्षणभरका वियोग नहीं सहा जाता वह सुन्दरी कैसे सहती होगी ? धिक्कार है मेरी मूर्खतापर विना विचारे ऐसी प्राणवल्लभाको इतने दिवसतक महाकष्ट दिया. हाय ! अब क्या करू--सग्रामके अर्थ माता पितासे

विदा हो आया पीछा जा नहीं सकता और मैं लौटकर आऊंगा तबतक वह दुखिया अवश्य प्राणत्याग कर देगी।

[प्रहस्तका प्रवेश.]

प्रहस्त--(पवनजयको चिंतावान् देखकर) मित्र ! आज क्या है ? किस शोचमे हो ? आपने सग्रामकी तैयारी की है, चिंतामें कार्य सिद्ध नहीं होता. कहो तो सही क्या विचार है ? कैसे मलीन मुख हो रहे हो ? क्या कुछ आजके निर्दयीपनेका पश्चात्ताप है ?

पवनजय--(स्वयम्) मित्रसे सम्मति लू यह मेरा दुःख सुखका साथी हे (प्रगट) क्या कहूं आज मैंने बड़ा अनर्थ किया, देखो उस चकवीकी पतिवियोगमे क्या दशा होगई है ?

प्रहस्त--(स्वयम्) आज तो कुँवरजी कुछ सीधेसे मार्गपर आये हुये दिखाई देते हैं, यह अवसर अच्छा है अब उचित सम्मति देनी योग्य है ता कि फिर न बहक जावें (प्रगट) तो आपही देख लीजिये।

पवनजय--इसीने मुझे अपनी मूर्खताका स्मरण कराया है, क्या कहूं लज्जाके वशीभूत कुछ कहा नहीं जाता. परतु हा शोक ! चुपभी रहा नहीं जाता, तुम मेरे परम मित्र हो, तुमसे दुरावभी नहीं रखना चाहता, सकट पडेपर मित्रसेही सहायताकी याचना की जाती है।

प्रहस्त--ऐसा क्या सकट है, आप निस्सदेह अपने मनकी बात कहिये यह कभी किसी औरसे प्रगट न होगी और यथाशक्ति उपाय किया जावेगा।

पवनजय--हे परममित्र ! सुनो जबसे अंजनासुंदरी मेरे गृहमें आई है कभी मैंने उसके साथ प्रीतिपूर्वक वार्तालाप नहीं किया. मेरी क्रूरताको ध्यान दो कि, इतने दिवस पर्यंत उस बिचारी अबलाको वियोगरूपी कूपमे डाल

रक्खा उसने प्रीतिमय पत्र भेजा उसकोभी मैंने नही देखा, अतमें विचारी निराश हो पयान समय ड्योढीपर आन खडी हुई, हा शोक ! उस समयभी उस विचारी निरपराधनी अबलाकी दीन दशा देख मुझे दया न आई और ऐसी परमसुदरीका अपमान करते हुये लज्जाको प्राप्त न हुवा, अब उस वल्लभाके कमलरूपी नयन जिनसे कि आँसुओंकी झड़ी लग रहीथी मेरे हृदयको बाण समान लग रहेहैं, मित्र ! तुमने भी मुझे ऐसे अनुचित कार्यसे न रोका॥

प्रहस्त–मदमातेको कभी हितकी बात अच्छी लगती है ? पवनजय ! कोई भी सज्जन पुरुष इसप्रकार अपनी स्त्रीका अनादर औरोंके सन्मुख किया करते हैं जैसा तुमने किया ? तुम्हारी बुद्धिको तो न जाने क्या होगया? अजनाका अभिप्राय विद्युत्प्रभुकी प्रशसा सुननेसे यह नहीं था कि वह उसके वशीभूत थी और उस सखीके वाक्य उसे प्रिय लगेहों. बरन् उसको वह तीक्ष्ण वचन अति कटु जान पडे होगे और अपनी कौमार अवस्थाका ध्यान करके उसने सखीसे कुछ नहीं कहा आजपर्यत मैंने भी तुमको बहुत समझाया परतु जब देखा कि आपके चित्तमें उस सुदरीकी प्रीतिका लेशमात्र भी नहीं रहा तो यह सोचकर कि समय पाकर कोकिला ही आम्रकलीकी चाहना करेगी. चुप होरहा. कलकी व्यवस्था देखकर तो मेरे रोमाच होआया. अजनाके पूर्ण सती और परम सुशीला होनेमें कोई सदेह नहीं है, वह निशिबासर तुम्हारे ध्यानमें मग्न रहती है, परतु बडे शोककी बात है कि तुमको कुछभी उसका ध्यान न रहा. एक समय वह था कि, उसके रूपकी प्रशसा सुनकरही विह्वल हो गये थे और कलका दिवस था कि उस भामिनीका द्वारपालके सन्मुख अनादर हुवा. हे मित्र ! जो मनुष्य अपनी सन्तान, सुशीला स्त्री, अथवा माता पिताओंको विना अपराध दुःख देता है वह

सदैव अपयशको प्राप्त होता है, गाडी दोपहियोंसेही चल सकती है, ऐसेही घरूकार्य बिना स्त्री पुरुषके ठीक नहीं चलता, विदुषी स्त्री कदापि नहीं बिगड सकती. क्योंकि वह जानती है कि मेरा धर्म क्या है और क्या करना उचित है और क्या कार्य करनेयोग्य है. यदि मूर्ख स्त्रियोंसे ऐसा होजाय तो आश्चर्य नहीं, गृहका संपूर्ण भार स्त्रीपरही होता है, विवाह स्त्री पुरुष दोनोंके आनदार्थ किया जाता है, किसी कविने कहा है--

श्लोक--" संतुष्टो भार्य्यया भर्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च ॥
तस्मिन्नेव कुले नित्य कल्याण तत्र वै ध्रुवम् " ॥ १ ॥

अर्थात् जिस गृहमें पुरुषसे स्त्री और स्त्रीसे पुरुष प्रसन्न रहते हैं वहां सदैव आनद रहता है, यदि बिना जाने किसीसे कोई कार्य बिगड भी जावै तो वह उसके दोषका भागी नहीं होता. किसी कविने कहा है--

चौपाई--" जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना " ॥

जिस पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष यथायोग्य प्रसन्नतापूर्वक मिल गये फिर उनको और सुखकी इच्छा नहीं रहती, प्रेम प्रीतिमें आनदपूर्वक दिन व्यतीत करते हैं, परंतु यदि परस्पर सच्ची प्रीति नही तो स्वप्नमेंभी आनंद प्राप्त नहीं होता--" जो जाके शरणे बसै, ताकी वाकू लाज " अब यह दीन अबला तुम्हारे अधीन है कहो अपना दुःख किससे कहै और क्या करै ? स्त्री पुरुषका सम्बध तीन हेतुसे किया जाता है, प्रथम सृष्टिकी वृद्धिके हेतु, दूसरे एक दूसरेके आनदके निमित्त और तीसरे इसलिये कि एक दूसरेकी सम्मातिसे कार्य करैं क्योंकि एकसे दो मन मिले हुवे मित्रोंकी बुद्धि सदैव अच्छी होती है युवा स्त्रीके पतिसे विलग रहनेपर लोग उसके चलनमे सदेह करने लगते हैं,

और परस्पर प्रीति न होनेसे इन तीनों कार्योंमेसे एक भी सिद्ध नहीं होता. तात्पर्य यह है कि, स्त्री पुरुषमें निष्कपट प्रीति होनेसेही विवाहका सुख प्राप्त होताहै; अन्यथा नहीं।

पवनजय--हे मित्र! अब मुझे उन बातोंको स्मरण करके बडा दुःख होताहै।

प्रहस्त--सुनो प्रिय! दूसरेके दुःखसे दुःखी होना और सुखसे सुखी होना तबही होता है कि, जब उसके साथ प्रीति हो. जिससे जिसे प्रीतिही नही तो फिर उसके सुख दुःख सेभी उसे कोई प्रयोजन नहीं होता और क्रोध की भी यही गति है अर्थात् वही क्रोध जड पकडता है जो दोनों ओरसे हो, यदि एक ओरसे क्रोध और दूसरी ओरसे सरलताका वर्ताव है तो परिणाममे सरलताहीकी विजय होती है, किसी कविने कहा है--

श्लोक--"नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गतिः॥
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसग्रहे" ॥ १ ॥

स्त्रीके समान बांधव नहीं, स्त्रीके समान गति नहीं और धर्ममें भी स्त्रीके समान सहायता करनेहारा दूसरा नहीं होता--इस लोकमें स्त्री पुरुषही सदैव साथ रह सकते हैं पतिव्रता स्त्रीकासा शुद्ध और निष्कपट प्रेम जगत्में नहीं मिलता और इसी हेतुसे पुरुषकी गति स्त्रीसे और स्त्रीकी पुरुषसे होती है. पुरुष विना स्त्रीके धर्म साधन भी यथायोग्य नहीं कर सकता कामादिकके वशमें न रहनेसे अधर्मी होही जाता है इस लिये हे मित्र! दपतिका परस्पर स्नेहपूर्वक रहनाही अति श्रेष्ठ है. जो पुरुष अपनी स्त्रीसे प्रीति नहीं रखते वह कामसे पीडित हो परस्त्रीगमन कर मानों दूसरोंका उच्छिष्ट भक्षण करते हैं और अपनी प्रियासे प्रीति न करना भी मानों उसे

व्यभिचारकी आज्ञा देना है. देखो पराये दोषसे चन्द्रमाकोभी कलक लग गया. सुशीला स्त्रीसे यदि कुछ अपराध भी होजाय तो उसे क्षमा करना चाहिये क्योंकि वह अवला है. हे सुजन ! स्त्रीको सदैव अपने निकट और वशमे रखना चाहिये, किसी कविका वचन है--

श्लोक--"लेखनी पुस्तक रामा परहस्ते गता गता ।
आगता दैवयोगेन घृष्टा भ्रष्टा च मर्दिता ॥

जो स्त्री अपने पतिसे प्रीति नही रखती उस स्त्रीकी और जो पुरुष अपनी स्त्रीसे प्रीति नहीं रखता उस पुरुषकी लोकमें प्रतीति नहीं होती ।

श्लोक--"कार्य्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा ।
आपत्तौ बुद्धिदात्री च सा भार्या भुवि दुर्लभा" ॥ १ ॥

और जो पुरुष ऐसी सर्वगुणसम्पन्न पत्नी मिलनेपर भी उसका निरादर करै उसकी इस लोकमे कोई प्रशसा कर नहीं सकता. हे मित्र ! जो स्नेह बुद्धि और भक्ति दोनोके सम्बन्धसे होता है वह दृढ रह सकता है, अन्तःकरणसे सब अपने गुण व दोषोको जानते हैं, परन्तु जाननेसे दोषोको रोंककर गुणोंके अनुसार चलना कठिन है. जैसा भली वातका जान लेना सरल है यदि वैसाही करना भी होता तो सृष्टिभरमे कोई दुखिया ढूँढेसे भी न मिलता. पवनजी ! कृतज्ञताका बदला केवल कृतज्ञतासेही दिया जा सकता है अन्यथा नहीं. जो कृतज्ञता आपके पिताने आपके पालन पोषणादिमें आपके साथ की है जबतक तुम भी किसीके पिता होकर वैसाही अपनी सन्तानके साथ न करलोगे उस ऋणसे उत्तीर्ण नहीं होसकते. सगमें स्त्रीसे और अकेलेमें सरोदसे विशेष कोई वस्तु चित्तके प्रसन्न करनेको नहीं है, मित्रके मनभावती बात कहनेवाले बहुत हैं और ऐसेभी मिल सकते हैं जो मित्रसे उसके दोष प्रग-

करदें परन्तु अपने सच्चे दोषोको श्रवण करके मनमें क्षोभ न करने और उनके सुधारमे प्रवृत्त होनेवाले विरलेही होते हैं. जिसको हाथ पकडकर सभाके रूवरू अपनी किया यदि उसकाही साथ न निभाया तो ऐसे पुरुषकी वात कौन प्रतीति करैगा ?

पवनजय--क्या कोई मेरा नाम भी अपयशके साथ लेते हैं ?

प्रहस्त–सुनो मित्र ! बडे आदमियोंमें बहुधा यही बडी न्यूनता होती है कि अपनी बुराइयोको आप ज्ञात नहीं कर सकते. किसी कविने कहा है–

श्लोक–

स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः सश्रृणुते स किम्प्रभुः ।
सदानुकूलेषु हि कुर्व्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ॥ १ ॥

अर्थात् वह कैसा मित्र है जो अपने प्रभुको अच्छी वातें न सुनावे और वह कैसा प्रभु जो उचित शिक्षा न सुने और जो मित्र अच्छा सिखाता है उसको सदा सुख रहता है और जो प्रभु हितकी बात सुनता है उसके यहां सम्पूर्ण सम्पदा डेरा किये रहती हैं आप मुझसे मित्र कहते हैं मुझे भी यथायोग्य बात आपके सन्मुख कहना उचित है मित्र वही है जो अपने मित्रके दोषभी उससे कहदे. प्रशंसा करनेवाले मित्र तो वहुत होते हैं, मैं आपका सच्चा और परम मित्र हू और आपभी मेरे ऊपर विश्वास रखते हैं. सच्चा मित्र दर्पणके सदृश होता है, दर्पणके सम्मुख होनेसे अपने मुखडेका अवगुण ज्ञात होजाता है, आपका अपयश तो महेन्द्रपुरतक छागया है और कोई एक अनजान मूर्ख उस विचारी निरपराधिनीकोभी अपराध लगाते हैं. सुनो मित्र ! कहावत प्रसिद्ध है ॥ " चार दिनाकी चादनी, फेर अँधेरी रात " ॥ यौवन अवस्था

बिजलीकीसी झलक दिखाकर झट निकल जाती है. तेलसे भरेहुए दीपकको भी पवनसे बुझनेका भय रहता है, अवस्थाका सुख भोगनाभी अवश्य है, सज्जनको तो उपकार प्रतिउपकार की भी इच्छा नही रखनी चाहिये. देखे चन्दन आसपासके वृक्षोंको सुगन्धित कर देते हैं परन्तु चन्दनको कोई सुगन्धित नही करता. सिंहसे वनकी और वनसे सिंहकी रक्षा होती है, इसी भाँति पतिकी स्त्रीसे और स्त्रीकी पतिसे रक्षा रहती है. देखो सारस अपने जोडेका वियोग होनेपर पलभर नहीं जीता और माथे तक पानी पहुँचे:पीछे उपाय नही हो सकता. अपना २ धर्म सबको पालना उचित है, स्वधर्म निभाये बिना सुखकी प्राप्ति नही होती. त्रियाका धर्म पतिकी सेवा और पतिका धर्म उसकी रक्षा करना है, परस्पर क्लेशके कारण दोनोहीं अपना धर्म नहीं निबाह सकते आप राजपुत्र हैं राजाका तो यह धर्म है कि, अपनी प्रजाको धर्म पर स्थिर रक्खै आप जान बूझकर क्यो अपनी सुशीला भार्याको धर्मसे विमुख रखते हो और आप भी विमुख रहते हो ? अब आपको उस दुखियाकी सुधि आई, यह भी अच्छा हुआ. वास्तवमे मनुष्यका मन उत्तम है, अविवेकके कारण कुछ मैला होजाता है, यदि वह दूर होजावै तो मन सदैव सत्यका ग्राही होता है. गृहकार्यादि और देहरक्षामें स्त्रीके समान अन्यसे सहायता नहीं मिल सकती हे सज्जन ! प्रीतिसे मित्र, प्रेमसे स्त्री और मानसे सेवक वश होजाते हैं. ऐसेकी प्रशंसा करना सरल है कि, जिससे हम भलीभाँति सूचित नही परतु अपने परम मित्रकी जिसके गुण व दूषण दोनोको जानते हैं झूँठी प्रशंसा करनेमें अतःकरण साक्षी नहीं देता ।

पवनजय—मित्र ! क्या तुम पहिलेसे अजनाको निरपराधिनी जानते थे ?

प्रहस्त—यदि वह निरपराधी और सुशीला न होती तो आपका इतना

अपमान काहेको सहती ? मैने समय समयपर अपना धर्म जानके कई बार आपसे कहा भी परंतु आप किसीकी काहेको सुनते थे, मुझे पूर्ण विश्वास है कि अजनाके परम सुशीला होनेमें कोई सदेह नहीं. देखो मित्र ! स्त्रीसहित होनेसेही पुरुषकी क्रिया ठीक रहसकती है, स्त्री पुरुषका क्लेश बहुधा बडी बडी हानि उत्पन्न करता है स्त्री पुरुषसे सच्ची प्रीति रखती हो तो पुरुषको भी उचित है कि उसका यथायोग्य आदर करे. वह पुरुष बड़ा भाग्यहीन है । जो स्त्रीरत्न पाकर उसका निरादर करता है, स्त्रीको विवाह पछि सिवाय अपने भर्ताके और किसीका सहारा नहीं होता, नारीही सृष्टिकी वृद्धिका कारण है, हे मित्र ! वृक्षसे टूटाहुवा पत्ता फिर नहीं जुडता एकही स्त्रीमें सौंदर्य और सुशीलता भाग्यसे ही प्राप्त होती है, जिस गृहमें सुशीला स्त्रीका अनादर होता है वह फल फूल नहीं सकता. सदैव स्त्री पुरुष दोनों क्लेशित रहते हैं और आनदकी प्राप्ति स्वप्नमे भी नहीं होती. अमृतको बिना पिये अमर नहीं होसकता. जो पक्षी सदैव पिंजरेमें रहा वह आकाशका रग नहीं जानता, इसी भाँति जो पुरुष स्त्री सहित आनद विनोद नहीं करते वह ससारका सुख भी नहीं जान सकते. चन्द्रमाकी रात्रि होनेसे और रात्रिकी चन्द्रमासे शोभा होती है. समुद्रसे मेघ पुष्ट होता है और मेघ समुद्रको पुष्ट करता है. कहीं चन्द्रमडलमें ताप नहीं होता, आप तो सर्वगुण सम्पन्न हैं कोई विद्वजन मत्स्यका आश्रय करके पार नहीं उतर सकता और हाथमें दीपक लेकर कूपमें नहीं गिरता. पुरुषके बिना स्त्री की क्रिया ठीक नहीं रह सकती, विद्वानोंका सन्मान राजद्वारमे और सुशीला स्त्रीका सुपात्रके गृहमें होता है. पुरुषकी जैसी चाकरी स्त्री करती है वैसी अन्य नहीं करसकता, स्त्रीसे किसी प्रकारका दुराव नहीं रहता. बहुधा मित्र स्वार्थी होते हैं और कारण पाकर

मित्रभाव करते हैं, परंतु स्त्रीकी प्रीति निष्कपट और विना कारणके होती है. अब आप युद्धक्षेत्रको प्रस्थान करते हैं सतीका अपमान करके मालिन चित्त न जाना चाहिये वचन कहनेमे सदैव अतरात्मा साक्षी होता है. मैं आपसे सत्य कहताहू कि अंजनासुदरी परम सुशीला है. कमलोका गुण मधुकर भलीभॉति जानते हैं; पतिको स्त्रीसे और स्त्रीको पतिसे सुख होता है; आप राजपुत्र हैं न्यायदृष्टिसे सबको देखना चाहिये. स्त्री स्वभावसेही कोमलचित्त होती है, पतिवियोगका सताप अवला नहीं सह सकती, माताके समान पोषण करनेवाला, पिताके समानहित करनेवाला और भार्याके समान दुःख हरनेवाला कोई नही होता. यदि स्त्री चतुर और सुशीला है तो पुरुष कैसाही खेदयुक्त हो प्रेमप्रीतिद्वारा हाव भाव कटाक्ष दिखाके अपने स्वामीके चित्तको प्रफुल्लित करही लेती है. यह ससार स्त्री पुरुप दोनोंहीसे विद्यमान है, बडे आनदका समाचार है कि आपको इतने दिवस पीछे भी उसकी सुधि आई उज्ज्वल वस्त्रपर केसरका रग शीघ्र चढ जाता है ।

पवनजय--मैंने बिना विचारे कार्य किया अब उसका फल भोग रहाहूं. किसी कविने कहा है—

दोहा--"विना विचारे जो करै, सो पीछे पछताय ।
काम बिगाडै आपनो, जगमे होत हॅसाय" ॥

अब कोई ऐसा उपाय करो जिससे उस प्रियासे मिलाप हो वरन् मेरा और उसका दोनोका जीवन दुर्लभ है (आंखोमे ऑसू भरकर) हाय ! उस प्राणप्यारीकी पत्रिकाको भी मैंने नही देखा—

महस्त--(जेबसे पत्रिका निकालकर) चलती समय मैने उठाकर इसे जेबमें डाल लिया था लीजिये अब पढ़ लीजिये ।

पवनजय--(प्रहस्तसे पत्रिका ले उसे चूम खोलकर पढ़ता है)-

" ओजी प्राणप्यारी री पतिया हो ।

पीवजी बांचत वेगा महल पधारज्यो ॥ टेक ॥

प्राणनाथसों विनती, करौं माथको नाय ।

मैं चेरी तुम चरणकी, क्यों मन लियो दुराय ॥

कहा कियो अपराध मैं, नहिं जानौं प्रतिपाल ।

भूल चूक सों जो हुओ, क्षमा करौ तत्काल ॥

हाय नाथ ! यह कहाकियो, विसरी अबला दीन ।

मैं वियोग कैसे सहौं, जलविन तडपत मीन" ॥

मित्र ! इस करुणाको देखकर तो आँखोमे आसू भरे आतेहैं (फिर आंसू रोककर पढताहुवा)

"प्रिय ! अपनेजान इस दासीने आज दिन पर्यंत कोई ऐसा अपराध नहीं किया जो आपकी अप्रसन्नताका कारण हो. स्त्रीका भूपण लज्जा है उसको भी मैंने नहीं त्यागा. यदि अनजानेसे कोई ऐसा अपराध हुवाभी है तौ क्षमा कीजिये"

(गद्गदवाणीसे) प्रिये ! तुम्हारा कोई अपराध नहीं वह सब मेराही दूषण है (फिर पढता हुआ)

और इस दासीको अपनी चेरी समझकर दर्शन दीजिये ॥

दोहा--"नारी शोभा शीलसों, सो मैं त्यागो नाय ।

अपराधी कैसे भई, यही अचभो हाय" ॥

हे प्राणेश ! स्त्रीका महद्धर्म पतिसेवा है उससे भी मैं विमुख रही जाती हू हे नाथ ! लोग मुझे अभागी कहकर वृथा कलंक लगाते हैं, माता पिताको

छोंडकर आपकी शरण गही अब आपका यह कोप, भला मैं दुखिया कहां जाऊं और किससे अपना दुखडा कहू ? जब चातक सर्व जलकी आश छोड केवल स्वातिबूँदके भरोसेपर जीता है. पपीहा केवल मेघकी आशा रखता है, आपके अपकार करनेसे मैं सबकी दृष्टिमे तुच्छ होरही हू"

(पत्रको छोंडकर) हे सुदरी ! मैं बडी भूलमें था यह तुम्हारा अपकार नहीं किंतु मेरा अपकार है (फिर पढता हुवा)

"हे प्राणेश ! वसतऋतुकी मजरी बसंत गयेसे विरस होजाती है और पुष्पमे सूखे पीछे सुगध नहीं रहती. मैं स्त्री हूं और स्त्री बहुधा अल्पबुद्धि होती हैं और अपना भला बुरा नहीं जान सकती, अब मैं भी नहीं जानती कि, मुझे क्या कर्त्तव्य है,—हे स्वामी ! आपतो रूठेहुए हैं और किससे अपने कल्याण निमित्त सम्मति ल्दू ! मैं तो आपके अधीन हू, इस कष्टसे छुडानेको भी आपसेही प्रार्थना करती हू और किससें कहू ? हे नाथ ! मेरे आप प्राणपति हैं, मैं आपसे कोई दुराव नहीं रखना चाहती, परन्तु बहुतसी बातें ऐसी हैं कि, जिनको पत्रद्वारा प्रगट नहीं करसकती और मनहीं मनमें सोचकर रह जाती हू. हे प्रियवर ! मैं यह भलीभॉति जानती हू कि यदि स्त्रीसे कोई अपराध होजाय तो उसे पतिपर प्रगट करके क्षमा मांगले क्योंकि पुरुष अनेक उपाय करनेकी सामर्थ्य रखता है परन्तु मैं क्या करू ? यह भी नहीं जानती कि कौनसा अपराध मुझसे बन पडा और अभाग्यवश वह शुभ अवसर नहीं पाती कि अपराधकी क्षमा मागू. हे स्वामी ! आप मेरे प्राणनाथ हैं अर्थात् मेरे प्राण आपके अधीन हैं, तो मैं बिना आपकी प्रीति के मृतक समान हू. स्त्रीके लिये सबसे उत्तम पतिको वशमे करनेका वशीकरण मत्र पतिभक्तिही है जिसका मैं निशिवासर ध्यान करती हूँ परन्तु न

जाने क्या प्रारब्धका दूषण है जो कार्य सिद्ध नहीं होता. हे आर्यपुत्र! स्त्रीकी पतिके निकटही शोभा होती है ।

दोहा—"बसौ आप मम प्राणमें, यासो नाहि वियोग ।
नैन दुखी दिन रैन हैं, चाहत प्रियतम योग ॥ १ ॥
करौ निवेदन पत्रिका, क्षमाकरौ श्रीमत ।
विशेष विनय अब कहॉं लिखौं, न्याय करो भगवत" २ ॥

अधिक क्या लिखूं ? ऑसुओंकी झडी आगे हो रहीहै, लिखने नहीं देती" ॥

आपकी दासी—**अंजना.**

(पत्रिका जेबमें रखकर प्रहस्तसे) मित्र ! इस प्रेमपत्रको देखकर तो मन हाथसे निकला जाता है अब वेग उस प्राणप्यारीके मिलनेका उपाय करो ।

प्रहस्त—यह क्या कहते हो, सत्य है स्त्रीके वश होकर मनुष्यकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती तुम माता पितासे विदा हो आये अब लौटकर चलना अयोग्य है ।

पवनजय—और उस प्राणवल्लभाको यहां बुलाते भी लज्जा आती है. सुनो मित्र ! मेरे मनकी प्रकृति इस समय सरोवरके, सदृश होरही है, इसमें चन्द्रमा सहित अनेक तारागणोका प्रतिबिंब पडता है परन्तु एक ककडी डालनेसे सब भङ्ग होजाता है । ऐसेंही मेरे मनमें अनेक भ्रम उपजते हैं परन्तु जिस समय उस प्रियाकी याद आजाती है सब भूल जाता हू. अब बिन बुलाये प्रियाके निकट जानेमें अंतःकरण सहायता नहीं देता ।

प्रहस्त—वाह ! बादलोको कोई बुलाने जाता है ? परन्तु यह तो कहो—जाओगे कैसे ? ।

पवनजय--यही मे सोच रहाहूं, चित्त विह्वल होता है ।

प्रहस्त--इतने दिन तो उस बिचारी दुखियाकी सुधिभी नहीं की, अब विह्वल हुये जाते हो. मनुष्य और पशुमे यही तो भेद है. एकके डाढी मूंछ और दूसरेके सींग और पूछ ।

पवनजय--मित्र ! तुम तो हॅसने लगे अब कुछ उपायभी करते हो ?

प्रहस्त -तो ऐसा करौ कि छुपवा अंजनाके भवनको चलौ और आनन्दरूप सुख संभापण कर प्रातःकाल सूर्योदयसे पहिले यहा आजावो. किसी कविने कहा हैं--

दोहा--"धनदेके जी राखिये, जी दे रखिये लाज ।
धन दे जी दे लाज दे, एक प्रीतके काज" ॥

विश्वास देकर घात करना उचित नहीं ।

पवनजय--हां, यह बहुत ठीक है, मुद्गरको कठककी रक्षा सौंप चलौ (मुद्गरका प्रवेश) लो वह भी आगया ।

मुद्गर--श्रीमहाराजकी जय ! कटकका सब प्रबन्ध यथायोग्य होगया है ।

पवनजय--(मुद्गरसे) हम इस गिरिकी यात्राको जाते हैं कटक तुम्हारे अधीन है प्रातःकालही लौट आवैंगे ।

प्रहस्त-- (स्वयम्) अब कुॅवरजी कैसे विह्वल होरहे हैं मनमें प्रीतिकी ज्वाला प्रगट होरही है. अग्नि वस्त्रमे नहीं छिप सकती ।

मुद्गर--जो आज्ञा (जाता है) ।

प्रहस्त-- (पवनजयसे) तो आप जाइये. मैं भी अपने डेरेमें विश्राम करता हू (जानेको उद्यत होताहै) --

पवनजय-- (रोकता हुवा) वाह ! मित्र ! जाते कहां हो ? तुम्हें तो साथ ले चलूंगा पुण्यसे सुगध आगे चलती है.

प्रहस्त--क्या वहाभी मेरी सहायताकी अवश्यकता होगी ?

पवनजय--तुम्हें तो हँसी सूझ रही है कालक्षेप होता है; चलो.

(जातेहैं)

चतुर्थ गर्भांक।

(स्थानअंजनासुंदरीका भवन)

[वाहर पवनजय आर प्रहस्तका प्रवेश.]

पवनजय-- (स्वयम्) रात्रि बहुत गई है सब सन्नाटा है, वह सुदरीभी सो रही होगी (रोनेका शब्द सुन पडता है) हैं ? इस समय यह कौन दुःखी रो रहाहै (कान लगाकर) यह तो स्त्रीका शब्द है न जानै वह सुदरीही विलाप कर रही है ।

(नेपथ्यमें रोनेकी आवाजके साथ)

दोहा--"प्राणनाथ यह का कियो, कियो व्याह दुख दैन ।
कहा कियो कछु ना कियो, दियो दुःख दिन रैन " ॥

हे प्रियतम ! ऐसा मैंने आपका क्या अपराध किया है जो मुखसे भी नहीं बोलते और दासियोके समान भी मेरा आदर नहीं करते (रोनेका शब्द) हाय ! मैंने आजपर्यंत किसी परपुरुषकी ओर आख उठाकर भी नहीं देखा स्त्रीजातिकी बहुधा व्यभिचरिणी स्त्रियोंने ऐसी दर घटा दी है कि सुशीलाओंकी भी कोई प्रतीति नहीं करता. अब आपके निरादरसे लोग मुझे वृथा

कलंक लगाते हैं. अब क्या करू ? मैं तो आपकी होचुकी चाहे जिस भाँति रखिये, पवनजयकी भार्या होकर अब दूसरे की नहीं कहला सकती. नदीका समुद्रसे मिलकर वियोग नहीं होता परतु यह मेरी प्रारब्धका खोट है कि, वायुमण्डलमे रहकर भी पवनको स्पर्श नहीं कर सकती।

दोहा–"कहाभयो मनके मिले, तनुकी बुझी न त्रास।
जैसे सीप समुद्रमें, करत पियास पियास"॥

मैं आपकी शरणमे हू, अब कहां जाऊं और किससे कहूं ? मेरे हृदयमें जलकीसी तरंगे उठ उठकर रह जातीहैं मृगके समूहसे बिछुडीहुई मृगी कीसी गति मेरी हो रही है. जैसे सूखे तृणको पवन उडाये फिरती है ऐसाही मेरा चित्त हो रहा है. हेनाथ ! आखोंसे पुतली जुदी नहीं होती और चन्द्रमा बिना चांदनीके नहीं रहता–मेरा जैसे महान कुलमें जन्म हुआ वैसेही प्रतिष्टित और योग्य पुरुषको व्याही गई. माता पिताका कुछ दूषण नही परतु अपनी प्रारब्धको क्या करू कि धारामें प्रवेश करकेभी जल नहीं पी सकती किसी कविने कहा है–

श्लोक–"न दानैः शुद्धयते नारी नोपवासशतैरपि।
न तीर्थसेवया तद्वद् भर्तुः पादोदकैर्यथा"॥

अर्थात्–स्त्री दान तीर्थ व्रत आदि किसीसे शुद्ध नही होती जैसी कि पतिसेवासे होती है हाय ! मैं इससे भी विमुख रही. हे स्वामी ! मे आपकी अर्द्धांगी होकर बिना आपके कोई धर्मकार्य भी नहीं करसकती स्त्री तीन प्रकारसे स्वदव अर्थात् अपने पतिकी पूजा करसकती है अर्थात् मन वचन और कायासे. पतिसे निष्कपट अटल प्रेम रखना और परपुरुषका स्वप्नमें भी चिंतवन न करना, यही मन पूजा है; और

प्रियवचन बोलकर सदैव अपने स्वामीको प्रसन्न रखना वचन पूजा है; और यथायोग्य अपनी देहसे पतिकी सेवा करना कायपूजा है. हा शोक ! हा शोक मैं सिवाय मनपूजाके और किसी प्रकार अपने इष्टदेवका पूजन नहीं कर-सकती. हाय ! मेरा कैसे कल्याण होगा. न जाने मेरा क्या होनहार है--जिस प्रकार चन्द्रमाको कमल अच्छा नहीं लगता ऐसे आपके वियोगमें वह यह चन्द्रमा मुझे प्रिय नहीं भासता ।

(रोनेका शब्द)

(नेपथ्यमें दूसरीस्त्रीका शब्द.)

हे सजनी ! धैर्यधर रोरोके क्यों अपने शरीरको क्षीण किये जाती है ।

प्रहस्त--(पवनजयसे) क्या अबभी आपको अजनासुन्दरीके शीलमें कुछ शंका रहगई ।

पवनजय--अब मुझे क्यो लज्जित करते हो देखो वह प्रिया मेरे विरहसे व्याकुल होरहीहै, जिसदिनसे यह सुन्दरी मेरे यहां आई मैंने उसका सब प्रकार निरा-दारही किया. अब उसे कैसे मुख दिखाऊ और अपनी प्रीति प्रगटकरू ? पहिले तुम जाकर मेरे आनेका समाचार उस प्राणवल्लभा से कहो हे प्रहस्त ! बेग जावो विलम्ब मत करो, यह विरहके शब्द मुझसे नहीं सुने जाते, प्रीतिमय सभाषण करनेको जी ललचा रहाहै. यदि उसे प्रतीति न हो तो मेरी मुद्रिका लेते जावो (मुद्रिका देता है) वसन्तमालाभी वहीं है ।

प्रहस्त--अच्छा, लावो मैं जाताहू (मुद्रिका लेकर भीतर जाता है अंज-नाको रोतीहुई देखकर और वसन्तमालाको उसके पास बैठीहुई देखकर वसन्त-मालासे) हे सखी ! अपनी सहेलीके आसू पोंछ और हर्षका समाचार दे पव-नजय अपनी प्रियासे मिलने आये हैं और बाहर खडे हैं ।

वसन्तमाला--हे सज्जन ! मेघ वरसे जबही अच्छा है, कुँवरजी कहां हैं ? (अजनासे) आली ! तेरा दुःख दूर हुआ, प्यासे पपीहाकी टेर मेघ घटाने सुनी. अब आंसुओंकी धाराको रोक और अपने प्राणप्यारेसे मिलनेकी तैयारी कर।

अञ्जना--अरी ! यह क्या स्वप्नकीसी बात कर रही है ? मेरा ऐसा कहां भाग्य है जो प्रियतमकी कृपादृष्टि हो, (गद्गदवाणीसे) सत्य है पति जिस स्त्रीका निरादर करता है वह सबहीका परिहासधाम होती है. मुझ अभागिनी ने दुःख भोगनेकोही जन्म लिया है सुख कैसे देख सकती हू।

प्रहस्त--(हाथ जोडकर विनयपूर्वक अञ्जनासे) हे सजनी ! तुम धन्य हो. मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकता तुमने पतिसे निरंतर निरादर पानेपरभी अपने पतिव्रतको नहीं त्यागा. नीतिमें लिखा है--

श्लोक--"कर्मैव कारणं चात्र सुगतिं दुर्गतिं प्रति।
कर्मैव प्राक्तनमपि क्षण किं कोस्ति चाक्रियः"॥

अर्थात् जगत्में सुख दुःख कर्मके अनुसार होते हैं और पूर्वकर्मका नामही प्रारब्ध है, कर्मरहित कोई जीव नहीं रहसकता, सत्य है स्वरूपवान् होनेका यह प्रयोजन नहीं कि, पुरुष परस्त्रीगामी और स्त्री व्यभिचारिणी हो जाय वरन् देहके सौंदर्यके साथ अन्तःकरणभी सुन्दर और स्वच्छ हो तबहीं वह रूप शोभा देता है अब आपके अशुभ कर्मका अन्त आगया. हे कल्याणरूपे ! अपराध क्षमा करो अब आपका सङ्कट निवारण हुआ। तुम्हारे प्रियतम प्रीतिवश होकर तुम्हारे चन्द्रमुखका दर्शन करने आये हैं, यह मुद्रिका लीजिये। (मुद्रिका देता है)

अंजना--(मुद्रिका लेकर प्रफुल्लित होती हुई) अहा ! यह तो वह मुद्रिका है जो मानससरोवरके तटपर उनके हाथमें थी।

वसंतमाला--(प्रहस्तसे) हे भद्रे ! आज हमारी सखीका अहोभाग्य है जो पवनजीने प्रसन्न होकर कृपा की ।

अंजना--(वसन्तमालासे) अरी ! आदरपूर्वक प्रियतमको लेआ (वसन्तमाला और प्रहस्त वाहर जाते हैं)

वसंतमाला--(वाहर पवनजयसे) महाराज ! पधारिये हमारी सखीकी आपके विरहमें क्या दशा होगई है ।

[पवनजय वसन्तमाला और प्रहस्तका भीतर प्रवेश.]

अंजना--(हाथ जोडकर पवनजयके पैरोंपर गिरती हुई) हे नाथ ! मेरा अहो भाग्य ! मैं धन्य हू जो आपने इस दासीपर कृपा की ।

पवनजय--(अंजनाको उठातेहुए) हे पतिव्रते ! उठो उठो गलेसे लगो और मेरा अपराध क्षमा करो ।

अंजना--हे स्वामी ! मैं आपकी चेरी हूं, आपने मेरा कुछ पराभव नहीं किया वह सव मेरेही अशुभ कर्मका फल था. अव आपका दर्शन पानेसे सर्व क्लेश दूर हुए और आपके स्नेहसे मेरे कार्य सिद्ध होंगे ।

वसन्तमाला--(प्रहस्तसे) हे सज्जन ! कमोदनी चन्द्रमाका दर्शन पाकर खिलना चाहती है, चलो वाहर चलें ।

(दोनों जातेहैं)

पवनजय--(अंजनाको गले लगाकर) प्रिये मैं तुम्हारे सम्मुख वड़ा लज्जित हू ।

अंजना--हे नाथ ! मेरा चित्त सदा आपके ध्यानमे मग्न रहताहै इसलिये आपका अनादर करनाभी मुझे आदर समान भासता था ।

पवनजय–हे सुंदरी ! मैंने पराये दोप करके तुमको अपराध लगाया इससे अबभी मेरा मुख तुम्हारे सम्मुख आनेको नहीं पडताथा।

अंजना--परंतु प्रीति खींचलाई।

पवनजय–हे अधरामृतवती ! मुझे तुम्हारे निरादर करनेका बडाही पश्चात्ताप है।

अंजना--(हाथ जोडकर) कृपा करके मेरे ऊपर अधिक भार न रखिये--अनुग्रहपूर्वक मेरा संदेह दूर करके कृतार्थ कीजिये।

पवनजय--प्रिये ! महेंद्रपुरमें विवाहसे एक रात्रिपूर्व तुम अपनी बाटिकामे सहेलियोंके सग रहस करने आई उस समय तुम्हारी एक सहेलीने विद्युत्प्रभुकी तुम्हारे सम्मुख बहुत प्रशंसा की और हे उत्तमकुलनदिनी ? तुमने भी उसको नहीं झिडका (अंजनाको गले लगाकर) उस समय मुझे यह प्रतीत हुवा कि,

(शिर नीचाकरके चुप होजाताहै)

अंजना–हे स्वामी . बस मैं समझगई, परन्तु हे प्रिय ! मैं उसी स्नेहकी शपथ लेकर कहतीहू कि, जिसके द्वारा मुझे यह शुभ अवसर प्राप्तहुवा कि, उस सखीके वचन जिसका नाम मिश्रकेशीहै मुझे विषवत् जानपडे और पिताजीसे कहके फिर मैंने मिश्रकेशीको अपने निकट न आने दिया (चकितसी होकर) हे प्रियवर ! आप उस समय कहॉ थे ?

पवनजय–प्राणवल्लभे ! कमलकी वासना लेनेको भ्रमर आपही आजातेहैं और दूजके चद्रमाको कौन नहीं निरखना चाहता. मैं तुम्हारे चद्रमुखकी शोभा देखने गयाथा और एक लताकी आडमें लुकरहा था अब मैंभी शपथ खाकर कहताहूं कि, तुम्हारे पतिव्रतमें किंचित्भी संदेह नहीं और (गल-

वाहीं डालकर) तुमकोभी शपथ दिलाताहूं कि, पहिली व्यवस्था भूलजावो (अधरामृत लेकर) हे प्रिये ! अब उसका विस्मरण करदो ॥

अंजना–प्रिय ! मैं आपके चरणोंकी दासीहूं आप इतनी अधीनता क्यों करतेहैं ? (पपीहाकी धुनि सुनकर)

दोहा–"काटू चोंच पपीहरा, ऊपर छिडकूं नोंन ।
पीव मेरा मैं पीवकी, तू पी कहै सुकौन" ॥

पवनजय–प्रिये ! अब रात्रि थोडी रही है चलो विश्राम करलें ।

अंजना–हे प्राणपति ! क्या जो चंद्रमा टालेसे नहीं टलताथा वह आज थोडीदेरभी विलव न करैगा ॥

दोनों–(गलबाहीं डाले सेजपर वैठतेहुये)

(परदा गिरताहै)

पंचम गर्भांक ।

(स्थान वंही अंजनासुंदरीका भवन)

[पवननय सेजपर सोये हुए और अजना सुदरी उनके पैर पलोट रही है.]

(नेपथ्यमें)

राग कालँगडा ।

"गया गया तेरा उजियाला, तोहि लगत पवनका झाला ।
आप जला अरु सगजलाया, पतग प्रीति मतवाला ॥
प्रीति करी अरु तोहि रिझाया, तनु अपना देडाला ।
निष्प्रेही तोहि जान सयाने, जात चंद्र दे टाला ॥

अंजना–(स्वयम्) क्या आज ऐसी जलदी रात्रि बीतगई वसंतमाला और मदनिका दीपकसे संबोधन करके मुझे सुनारहीहैं कि आली ! प्रियतमसे न्यारीहो सयोगरसका वैरी अरुणरूप धारण किये' चला आताहै सुखकी घडीको जाते बेर नहीं लगती (धीमे स्वरसे) हे प्राणनाथ ! मेरे हारके मोती शीतल होचले और दीपककी ज्योति मद हुई–देखिये चंद्रमा आपके मुखकी कांतिको देख मुखमोड चलाहै. सूर्य आपके तेजकी प्रशंसा सुणकर भेट करने और चद्रमाका तेज हरने चला आताहै हे प्रियतम ! सचेत हो सचेत हो आपके मित्र याद कर रहेहैं ।

दोहा–"चकई वियोग मिटायके, कली कुमुदकर बंद ।
तारामंडल साथ ले, चंद्र जात है मंद ॥
प्रियतम बाट निहारती, कली कमल मुसुकात ।
कोयल कूक सुनावती, होन चहत परभात" ॥

(नेपथ्यमें)

पर्ज कालंगडा ।

भोर भयो सुमर देव, पुण्यकाल प्रातरे ।
अरुण वरुण बादला, प्रभातको जतातरे ॥
पशु पक्षी छाँड वास, भोज्य लेन जातरे ।
भानपुत्र जन्यो चात, पूर्व दिश मातरे ॥
कोकिला सुनात बैन, चिडिया चोंचातरे ।
आलसको त्यागके, बटोही बाट जातरे ॥
तारे आकाश माहिं, श्वेतरंग दिखातरे ।
देखके कुमोदरूप, पंकज मुसुकातरे ॥

अंजना--(पतिके पैर पलोटती हुई) हे प्राणेश ? सुनिये साधु महात्मा प्रातःकाल उठकर गानकर रहेहैं।

पवनजय-(जँभाई लेताहुवा उठताहै) प्रिये! यह क्या कर रही हो क्या अभीसे भोर होगया।

अंजना--हाँ स्वामी! चिडियोका चहचाहट होने लगा और पूर्वदिशाने अरुणरूप धारण करलियाहै अब मेरा अग अग प्रसन्न हुवा और मनवाछित फलकी प्राप्ति हुई. स्वाति नक्षत्रकी वृष्टिसे मुक्तामणिकी आशा होतीहै कृपा-पूर्वक मेरे कल्याणनिमित्त सास श्वशुरको सूचित कर जाइयेगा--कदाचित् आपकी दासीको वृथा कलंक ने लगाया जाय ॥

पवनजय--प्रिये कुछ शोच मत करो मैं शीघ्र आऊगा--अब सग्राममे जानेके अर्थ माता पितासे विदा हो आया फिर उनके निकट जाते हुए लज्जा आतीहै--यदि ऐसाही अवसर हो तो मेरी मुद्रिका दिखा देना (ऊचे स्वरसे) मित्र यहा आवो ॥

[प्रहस्त और वसतमालाका प्रवेश.]

प्रहस्त--मित्र! कुछ कटक और सग्रामकाभी शोचहै अभी सूर्यने दर्शन नहीं दिया चलो जैसे आये हैं वैसेही चलैं ॥

पवनजय--प्रहस्तजी! सत्य तो यहहै कि, इस चमत्कारी भवनके छोडनेको जी नहीं चाहता।

प्रहस्त--अब आपकी ऑखोंमें चमत्कार छायाहै--नहीं पवनजी नहीं ऐसा विचार कदापि मत करो. तुम सग्रामके अर्थ घरसे निकले हो और रावण तुम्हारी बाट निहार रहाहै अपने स्वामीकी सेवा करो माता पिताको क्या मुख दिखावोगे।

अंजना--हे प्रियतम ! अब मैं संतुष्ट हुई--आप प्रसन्नतापूर्वक पिताजीकी आज्ञाका पालन कीजिये ॥

पवनजय--(प्रहस्तसे) अच्छा मित्र तुम चलो हमभी आतेहैं ।

प्रहस्त--(मुसुकुराकर) कहीं प्रीतिवश होकर अपयश न कराना ।

(जाताहै)

पवनजय--(अंजनाको हृदयसे लगाकर स्नेहपूर्वक) प्रिये ! अब मैं जाताहूं उद्वेग मत करना थोडे दिवसमें स्वामीका कार्य करके लौट आताहूं आनदपूर्वक कुशलसे रहना और कुछ चिता मत करना (वसंतमालासे) सखी प्रियाकी यथायोग्य सेवा करती रहना भला ।

वसंतमाला--महाराज ! आपने तो........

अंजना--(वसन्तमालाको हाथके झालेसे वर्जतीहुई) हे स्वामी ! यह तो मेरी बाल्यावस्थाकी सखी है प्रिय ! अब तो अपनी दासीके हाथसे ककण वँधालीजिये ।

पवनजय--(हाथ बढाताहुआ) लो प्रिये ! बाध दो, आज प्रातःकालही तुम्हारे चन्द्रमुखका दर्शन हुआ है, अवश्य विजय होगी ।

अंजना--(ककण बांधतीहुई) शीघ्र फिर दर्शन दीजियेगा और अपनी प्रियाकी सुधि लीजियेगा ।

पवनजय--हे शशिवदनी ! तुमने ककण क्या बांधा मुझे अपनी प्रीतिसे वाँध लिया अब तो यहांसे जानेको जी नही चाहता ।

अंजना--मैं तो आपके चरणोंकी दासीहू और सदैव आपकी सेवाके निमित्त तत्परहूं, मन मिले हैं तो तनु मिलतेही रहैंगे, अपने पिता और स्वामीका कार्य प्रसन्नतापूर्वक कीजिये, वरन् लोग कहैंगे कि, पवनजयने

स्त्रीके वशीभूत होकर अपने मानका विचार न किया मै अपने स्वामीकी निन्दा किसी प्रकार सुनना नहीं चाहती वृक्षकी छाया कितनीही दूर जावे उसकी जडको नहीं छोडती।

पवनजय–(अजनाको प्यारकरके) प्रिये ! कुशलपूर्वक रहना, अब आज्ञा दो मैं जाता हू (चलदिया)

वसंतमाला--सुन्दरी मै भी धन्यवाद देती हू।

अंजना--(मुसुकुराकर चुप)

वसन्तमाला--चलो तुम्हारे स्वामी प्रसन्न हुए अब आनन्दसे रहो।

(जाते हैं)

पटाक्षेप।

अंक ४.

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान अंजनाका भवन)

[अजना फूलोंकी सेजपर शयन कर रही है और बसन्तमाला पगचम्पी करतीहुई धीमे स्वरसे गारही है.]

राग मलार।

तुम जात पिया अरि मारनको, हम छॉडी व्योग सहारनको ॥
चन्द्रछटा निशि करत उजाली, जिया तरसत गलहारनको।
अरु रति बान सँवारनको ॥
मोर चकोर अरु मधुर पपीहा, कूकत जीय विदारनको।
लव लागी कारज सारनको ॥

अब तो गर्भके भारसे अजना मदोन्मत्त दिग्गजके समान चलती है युगल स्तनोके अग्र भाग श्याम पड गये हैं उनमे गाठें पड गई हैं और धौलेर खरोचेसे जान पडते है, पयके भारसे पयोधर झुके पडते हैं नाभी फैलकर कमल समान होगई है और शरीरमें आलस्य भी वहुत आगया है हाथ पॉव भारी मालूम होते हैं और मुखपर चंचलता छा रही है।

अंजना–(अचानक चौंककर उठती हुई) हैं! है!! यह क्या आपत्ति है क्षीरसागरमें दावानल कहांसे चली आई।

वसंतमाला--(चकितसी होकर) क्या! क्या है! आली! क्यों अचानक चौंकपडी?

अंजना--(काँपतीहुई) सखी कुछ न पूँछ।

वसंतमाला--कह तो सही क्या पीर है?

अंजना--वसंतमाला! क्या कहूं अभी एक ऐसा बुरा स्वप्नदेखा है कि कलेजा थर्रारहाहै।

वसंतमाला- हे सजनी! धैर्यधर कह तो सही क्या देखाहै?

अंजना--कहतेहुए कंठ रुकताहै रात्रिकी वेला राहुने चद्रमाके प्रकाशको सूर्यसे ग्रहण कियाहुवा प्रतीत न करके चद्रमाका मुंह कालाकर उसे आकाशमंडलसे निकालदिया॥

वसंतमाला--अजने! तुमको तो ऐसेही भ्रमहुवा करतेहै (ऊचेस्वरसे) अरी मदनिके! यहां आ सखीको गाकर रिझावैं और सहेलियोंकोभी लेतीआ (अजनासे) आली सेजपर बैठजा।

[मदनिका और कई एक सखियोका प्रवेश.]

सब सहेली--(घुमर देतीहुई)

मैंतो कायाकी सुधि भूलगई, भूली भूलीजी पियारा तोरे हेतरे।
सौतनके सगाती चंदा छिपरहे, छिपियोछिपियोजीकमलनकाबैरी श्वेतरे।
बजमारे पपीहा जिन बोलियो, बोली बोलीजी थारी भोरी दुख देतरे॥

[चपलाका प्रवेश.]

अंजना--आज क्या है जो सासूजीकी दासी चली आती है अरी चपला तू स्वयमही आई है अथवा कुछ शुभ समाचार लाई है।

चपला--मैं महारानी की प्रेरीहुई आपकी सेवामे आईहूं स्वयम् महारानी भी थोडे कालमें यहां पधारेंगी।

अंजना--मैं धन्यहू मेरा भाग्य धन्यहै आज सासूजीकीभी कृपा मेरे ऊपर हुई--अरी वसंतमाला ड्योढीसे भवनतक सुथरा बिछौना करदे, सासूजी आवें तब उनपर पुष्पवृष्टि करना (और सहेलियोंसे) अब तुम जावो मैं स्वयम् सासूजीकी शुश्रूषामे प्रवृत्त रहूंगी।

चपला--(स्वयम्) ऐसाही तो सासूजी तुम्हारा आदर सत्कार करेंगी यहां तो पूँछपाछकीभी आवश्यकता नहीं है दृष्टि मात्रसेही सर्ववृत्तात निश्चय होजायगा॥

वसंतमाला--बहुतअच्छा (कार्य करतीहुई स्वयम्) कदाचित् ऐसा जानपडताहै कि अजनाके गर्भका समाचार सुनकर केतुमती निश्चय करनेको आतीहै यदि पवनजयका यहा आना प्रतीत न हुवा तो बडी कठिनाई होगी।

[केतुमतीका प्रवेश.]

अंजना--(उठकर झारी हाथमेंले) अहोभाग्य! अहो भाग्य मेरा। जो आज आपने इस दासीपर कृपा की (अर्घ्यदेकर केतमतीके पैर छूतीहुई)

केतुमती--(क्रोधपूर्वक)चल परेहट मेरे पाँवको स्पर्श मतकर मैं तेरा, मुख देखना नहीं चाहती।

अंजना--(चकित होकर) सासूजी क्याहै ? क्यों इस दासीसे अप्रसन्नहो ? मैं आपका क्रोध सहने योग्य नहींहू, मैंने अपने जान आपका कोई अपराध नहीं किया यदि भूलसे हुवाभीहो तो बालक जानकर क्षमा कीजिये बडी आशा देखते देखते तो प्राणनाथ प्रसन्न हुए अब आप क्यों क्रोध करती हैं

केतुमती--चलहट क्यों झूंठीबातें बनातीहै मेरे बेटेने जिस दिवससे तू यहा आई है तेरा मुखभी देखाहै ? हमारा कुल चद्रकिरण समान उज्ज्वलहै जिसको तैने कलकित कर दिया मैं अबतक पवनका दूषण जानतीथी अब प्रतीत होगया उसने तुझ व्यभिचारिणीको यथायोग्य दण्ड दिया।

वसंतमाला--अरी अंजने ? कुँवरजी मुद्रिका देगये हैं. उसे क्यों नहीं दिखादेती ॥

अंजना-(मुद्रिका उँगलीमें न पाकर) हाय ! हाय ! हा सर्वनाश ! सर्वनाश ! यह क्या आपत्ति है अब मैं कहींकी न रही (केतुमतीसे) जिस दिवस प्राणपतिने युद्ध क्षेत्रको प्रस्थान किया उसी रात्रिको इस दासीपर कृपा की (हाथजोडकर) सासूजी ! मैं शपथ खाकर कहतीहूं कि, मेरी प्रार्थना सही है ॥

केतुमती--(वसंतमालासे) यह सब तेरे कौतुक हैं कुटिलाके निकट वेश्या रहै तो फिर कैसे कुशल रहसकतीहै (अजनासे) क्या चारित्र बनायाहै व्यभिचारिणीकी शपथ कोई प्रतीत करता है ?

[प्रह्लादका प्रवेश.]

प्रह्लाद--(केतुमतीसे) प्रिये ! आज क्या हैं? क्यों क्रोधितसी होरहीहो— अचानक मुझे भी राज्यकार्य छुड़ाकर क्यों बुलायाहै ?

केतुमती–महाराज! देखिये आपकी पुत्रवधूके आचरण यह तो आपभी भलीभाँति जानतेहै कि जबसे यह यहा आईहै पवनने इसका मुखतक नहीं देखा अब अजनाजी गर्भधारण किये विराजती हैं और कहतीहै कि प्रस्थान समय पवनजयने कृपा कीथी ॥

अंजना–(हाथ जोड़कर) यदि आपको विश्वास न होतो प्राणनाथके आनेपर उनसे निश्चय करालीजियेगा।

केतुमती–(अंजनासे झिडककर) चुपरह अधिक क्यों जीभ चलाती है (प्रह्लादसे) हे प्राणेश! इस अत्याचारिणीने हमारे सुशोभित कुलको कलंकित करदिया, ऐसी स्त्रीको इस भवनमें नहीं रखना चाहती (अंजनासे) ऐसे स्त्रीचरित्र मैंनेभी बहुत देखेहैं।

प्रह्लाद–(क्रोधित होकर) हा शोक! इसने श्रेष्ठकुलकी कन्या होकर यह क्या दुराचार किया? ऐसी स्त्री यहां रखने योग्य नहीं इसने पतिव्रत और कुललाजको तृणवत् तोड़डाला।

अंजना–(रोतीहुई सास श्वशुरके पैरोंपर गिरतीहै) मैं निरपराधिनीहू–मैंने आज पर्यंत कोई दुराचार नहीं किया।

महाराज इतना अवकाश दीजिये कि, प्राणनाथ यहां आजावैं।

केतुमती–(ठोकर मारकर) चल हट क्यों चपलता करतीहै।

प्रह्लाद–बात बनानेमें तो बहुधा पुरुषकी अपेक्षासे स्त्री अधिक चतुर होतीहैं।

अंजना–(रोतीहुई) हाय! मैं कैसी अभागिनीहूं–एक आपत्तिसे छूटी तो दूसरीमें पडगई–हे नाथ! आपतो शीघ्र आने को प्रण करगयेथे इतने दिवस कहा लगाये।

केतुमती--(प्रह्लादसे) देखिये महाराज ! क्या चरित्र दिखा रहीहै ।

वसन्तमाला--(अंजनासे) अरी सखी ! अब धैर्यधर और साहसपकड-रोनेसे कुछ न होगा तेरे ऊपर किसीको करुणा न आवेगी--तेरा जन्म केवल दुःख भोगनेकोही हुआहै ।

केतुमती--(चपलासे) अरी वेगजाकर क्रूरको बुलाला इस व्यभिचारिणीको मेरे सामनेसे निकाले ।

चपला--जो आज्ञा (जातीहै)

अंजना--(रोतीहुई) हाय ! विनाबादल यह बिजली कहा से टूटपडी परमशीलको धारण करकेभी व्यभिचारिणी कहवाना मेरी प्रारब्धमे था ।

केतुमती--वाह यही तो शीलके आचरण हैं ?

अंजना--(रोतीहुई) सासूजी ! प्राणनाथ युद्धको चलेगये अब मै दीन अबला अकेली रहगई मेरी रक्षा करनेहारा यहा नहींहै चाहै सो कीजिये मेरा किंचित्‌भी अपराध नहीं ।

(चपला और क्रूरका प्रवेश)

केतुमती--(क्रूरसे) हे किंकर ! इस दुराचारिणी अजना और इस कुटिला बसतमालाको अभी नगरसे बाहर छोडआओ ।

क्रूर--जो आज्ञा महारानीजू (स्वयम्) सत्यहै जिस स्त्रीका पति निरादर करताहै उसके सब लागू होजातेहैं ।

वसंतमाला--(अजनासे) आली ! अब रोनेसे क्या होगा धैर्य धरो और सासूजीकी आज्ञाका पालन करो ।

सोरठा--"धर्म करत दुख होत, सोच करो मत हे सखी ।
कौन कर्मको सोत, प्रगट हुवो अब आपके" ॥

अंजना—(रोती हुई) हाय ! इस बारीसी अवस्थामे क्या २ दुःख देखे और न जाने क्या क्या और देखने व सहने पडैंगे।

दोहा—"एरे पापी जीवरा, जिन बाहर तू होय।
धैर्यसहित अवगुण लग्यो, भली लजाई मोय" ॥

वसंतमाला—हे सजनी ! इसका शोच मतकर पूर्व कर्मके फलकाही नाम प्रारब्ध है, और प्रारब्धके प्रतिकूल होनेसे महान् सत्कर्मका फलभी नष्ट होजाताहै।

क्रूर—(अजना और वसतमालासे) मैं हाथ जोडकर अपने अपराधकी क्षमा मागताहू--आज्ञाका प्रतिपालन मेरा धर्म है चलिये।

(अन्जना और वसंतमाला रोती हुई क्रूरके साथ जातीहै)

चपला--(केतुमतीसे) महाराणीजी ! अब अपने भवनको सिधारिये--आज आपको वडा परिश्रम हुवा।

प्रह्लाद--हे वल्लभे ! अव शात हो और अपने भवनको जावो।

केतुमती--महाराज ! कुलको दाग लगनेहारा था सो तो लगहीगया।

प्रह्लाद--यह हमारी प्रारब्ध है अब मुझे न्यायशालाको विलम्ब होता है।

(सब जातेहैं)

द्वितीय गर्भांक।

(स्थान महेन्द्रपुरमें राजा महेंद्रका भवन)

[राजा महेन्द्र और हृदयवेगाका प्रवेश.]

हृदयवेगा--महाराज ! अजनाको जैसा सुशोभित कुल प्राप्त हुवा वैसा भर्ताका सुख नहीं मिला।

महेन्द्र--हे प्रिये! हमारा धर्म था सो करदिया, सुख दुःख प्रारब्धानुसार सर्व प्राणियोको होतेहैं ।

[सुलक्षणका प्रवेश.]

सुलक्षण--महारानीजू! अंजना वसंतमाला सहित आईहै द्वारपर खडीहै

हृदयबेगा--अरी तू वेगजाकर वेटीको लेआ क्या द्वारपालने उसे रोक दिया

सुलक्षण-हे सजनी! रोकनेका एक कारण औरही है ।

महेंद्र-वह क्या ?

सुलक्षण—महाराज! आपकी पुत्री वडी दीन अवस्थामे हैं अंजना तो भोलीभाली और सर्वगुण सम्पन्न है—परन्तु न जाने उसे कलंक कैसे लगगया ।

हृदयबेगा--अरी तू क्या वकरहीहै कलक कैसा ?

सुलक्षण—महारानीजी ! अजना काले वस्त्र पहिने द्वारपर खडी है, अंगोमे कांटे लगलगकर लोहू निकल रहाहै, ससुरालसे गर्भवती होनेके कारण निकाली गई है ?

महेन्द्र—गर्भवती ?

सुलक्षण—हां महाराज ! वह तो सहस्रो शपथ खाकर यही कहती है कि मैं निरपराधिनीहू और अजनाहैभी भोरीसी उससे ऐसा कार्य होनाभी असम्भव जान पडताहे ।

(प्रसन्नकीर्तिका प्रवेश.)

महेन्द्र—(प्रसन्नकीर्तिसे) वेटा ! तुम्हारी सहोदरने हमारे निर्मल कुलको कलंक लगादिया. अव यहां आकर द्वारपर खडी है, मैं ऐसी वेटीका मुख नहीं देखना चाहता, तुम जाकर उसे नगरसे वाहर कर आवो ।

प्रसन्नकीर्ति–पिताजी! आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा परमधर्म है। यदि अपराध क्षमा हो तो कुछ प्रार्थना करू!

महेंद्र–कहो पुत्र! क्या कहते हो?

प्रसन्नकीर्ति–हे तात! विना निश्चय किये ऐसी आज्ञा देना उचित नहीं वसन्तमालाभी अजनाके सग है उससे सर्व वृत्तान्त पूँछ लीजिये केतुमतीकी क्रूरता आप भी जानतेही हैं उस विचारीको विना अपराध झूँठा दोष लगाया है सुसरालसे सास श्वशुरने निकाली यदि आप भी अपनी सन्तानका निरादर करैंगे तो वह विचारी अब किसकी शरण लेगी?

दोहा–"व्याघ्र सताई मिरगिया, वनका शरणा लेय।
अग्नी प्रज्वलित वॉह भई, निरस प्राण तजदेय" ॥

तापकी मारी महाविकल अपने माता पिताका स्नेह जान आपकी शरण आईहै द्वारपालने विचारी दुखियाको बाहर रोक दिया इससे बडी लज्जित होरही है अजना आपकी लाडली बेटीहै ऐसा कोप न चाहिये।

महेन्द्र–हे पुत्र! जिसने बडी कुलबालिका होकर अपने माता पिताको कलंकित किया,क्या ऐसी सहोदरकी प्रशसा करते तुम लज्जाको प्राप्त नही होते! वाह! चद्रमाका मित्र चकोर वसतमाला सदासे अंजनाके पास रही है वह सत्य काहेको कहैगी स्त्रीको विवाह हुये पीछे प्योसारसे कुछ आशा अथवा प्रयोजन न रखना चाहिये, जिस तरह होसकै अपनी सुसरालवालोकी प्रसन्नतामें प्रवृत्त रहै–बेटा हमारा तो इतनेहीमे मरण होगया कि वह ऐसी अवस्थामें यहा चली आई, हाय! इस बेटीने मेरे सर्वकुलको लज्जित किया, इस समय मेरे जीको जैसा खेदहै मैंही जानताहूं मैं कई बेर सुनचुकाहूं कि, पवनजय अंजनासे प्रीति नहीं रखता फिर गर्भ अवस्था कैसे हुई।

हृदयबेगा--तो इसी दुराचारके कारण अंजना सुसरालसे निकाली गईहै, वह कन्या तो ऐसी नहीं है, यह चरित्र कहांसे सीख लिये, महाराज, पवनजयने युद्धक्षेत्रको प्रस्थान किया उस दिवस तकका तो सर्व वृत्तान्त आप सुनही चुकेहैं हा शोक! हा शाक!! इस बेटीने कैसा हमको लज्जित कियाहै।

महेन्द्र--प्रसन्नकीर्ति! तुम वेगजावो और अंजनाको नगरसे बाहर कर आवो मेरे सम्मुख मतलाना यदि कोई उसको शरण देगा तो यथोचित दण्डको प्राप्त होगा।

प्रसन्नकीर्ति--जो आज्ञा पिताजी! (स्वयम्) इनका कैसा कठोर हृदय है अपनी सुतापर तनक दया न आई और नगरसे निकालनेकी आज्ञा देदी।

(जातेहैं)

महेन्द्र--प्रिये! चलो आज तुम्हारी पुत्रीका कृत्य सुनकर मेरे चित्तको बड़ा क्लेश प्राप्त हुवाहै।

(सब जातेहैं)

तृतीय गर्भांक।

(स्थान आदित्यपुरका राजभवन.)

[राजा प्रह्लाद, केतुमती, पवनजय और प्रहस्तका प्रवेश.]

प्रह्लाद--(पवनजयसे) कहो पुत्र! युद्ध कैसे समाप्त हुवा?

प्रहस्त--श्रीमहाराज! सज्जनपुरुष अपनी प्रशंसा नही करते, पवनजयके पराक्रमसे रावणका विजय हुवा वरुणने सेवा अंगीकार की और खरदूषणको छोडदिया, लंकाधीश पवनजयका पराक्रम देख वडे प्रसन्न हुए और इस सहायताके निमित्त आपको बहुत बहुत धन्यवाद दिया।

प्रह्लाद--(पवनजयसे) पुत्र ! तुम धन्यहो तुमने अपने पिताकोभी सुयश दिलवाया और रणमे विजयको प्राप्तहुए, गुणज्ञ और आज्ञाकारी पुत्रका यही कर्तव्यहै जो तुमने किया. अब मैं राजसभाको जाताहू वहाँभी तुम्हारी प्रशंसा करूंगा।

पवनजय--हे तात ! मैं प्रशंसाके योग्य नहीं हूँ, पुत्रका धर्म माता पिताकी यथोचित् सेवा करनाहै सो मैंने यथाशक्ति किया और करनेको सदैव उद्यतहू।

प्रह्लाद--(पवनजयको छातीसे लगाकर) बेटा ! तुम सरीखा पुत्र पाकर मेरा कुलभी सुशोभित हुवा, अब अपनी मातासे सभाषण करा (जाताहै)

केतुमती--बेटा ! जैसे पराक्रमी पुत्रको पाकर मुझे प्रसन्नताहै वैसाही तुम्हारी कुशीला स्त्रीने हमारे कुलको लज्जित किया।

पवनजय--(चौंककर) माताजी ! आप क्या कहती है ?

केतुमती--यह तो मैं भलीभाँति जानतीहूं कि तुम उस दुराचारिणीसे कभी मुखसेभी नहीं बोले तुम्हारे चलेजानेके कुछदिन उपरांत उसके गर्भचिह्न प्रगटहुये और यह चरित्र देख मेने उस व्यभिचारिणीको उसकी कुटिला सखी-सहित नगरसे बाहर निकालदिया।

पवनजय--(दहाड मारकर) हाय जननी ! तुमने यह क्या अन्याय किया (मूर्च्छित होकर गिरताहै)

प्रहस्त--(पवनजयको सँभालताहुआ) माताजी ! अञ्जनासुन्दरी परमसु-शीलाहै--क्या आपने मुद्रिका नहीं देखी ?

केतुमती--(हाथ मलतीहुई) हाय ! हाय !! यह क्या हुआ-मैंने उसकी किसी बातकोभी प्रतीति न किया (पवनजयसे) अरे बेटा ! सचेत हो !

सचेत हो! यदि तुमहीं अपनी प्रियापर प्रसन्न हुए थे तो यह समाचार अपनी मातासेभी क्यो नहीं कहगये—यह अनर्थ काहेको मेरे हाथसे होता।

पवनजय–(सचेत होकर प्रहस्तसे) मित्र चलो अब यह भवन भयानक मालूम होताहै प्रियाको हेरना चाहिये (दोनों जातेहैं)

केतुमती–बेटा! तुमभी कहा जातेहो (रोतीहुई पीछे दौडती जाती है) (पटाक्षेप)

अंक ५.

प्रथम गर्भांक।

(स्थान सघनवन)

(प्रसन्नकीर्ति और अञ्जनाका काले वस्त्र पहिने बाल बखेरे विपदावस्थामें वसंतमाला सहित प्रवेश.)

प्रसन्नकीर्त्ति–बहिन! मेरा अपराध क्षमा करना—मे पिताजीकी आज्ञानुसार तुम्हें इस वनमें छोडे जाताहू।

अंजना–(रोतीहुई) भइया!

दोहा–"कुदशा उदय होत जब, नहि कोऊ अपनाय।
जारत होम करतहू, जो आगी छुइजाय"॥

हे भ्राता! माता पिताका और तुम्हारा कोई दूषण नहीं यह सब मेरेही अशुभकर्मका फल है माता पिताने तो मुख देखनाभी स्वीकार न किया तुम यहांतक तो आये।

प्रसन्नकीर्त्ति-(आखोंमे आंसू भरकर) बहिन! अब मै जाताहूं—पिताजीके क्रोधसे भय लगता है (जाता है)

अंजना--(रोती हुई) सखी ! माता पिताने तो बुलाकर बातभी न पूँछी और भइयाको मुझे वन छोडते लज्जाभी न आई ।

वसंतमाला--हे सुशीला ! धैर्य धरो अब इस सृष्टिमे तुम्हारा सत्यकी प्रतीति करनेवाला सिवाय पवनकुमारके दूसरा कोई नहीं रहा ।

अंजना--(दहाड मारकर) हे प्राणनाथ ! आपने कहा इतना विलम्ब लगाया (मूर्च्छित हो गिरतीहै)

वसंतमाला--(जल छिडककर) चेत करो, हे सजनी ! चेत करो यह समय साहस खोनेका नहीं है धैर्य धरकर आपत्को सहन करो, सदैव दिन एकसे नही जाते वह समय नहीं रहा तो यहभी न रहैगा सास श्वशुर और माता पिताकी आज्ञाका पालन करनाभी तुम्हारा धर्म था अब उठो तीखे कटक कोमल अंगको वेधते हैं ।

अंजना--(सचेत होकर ठढी साँस भरतीहुई) हाय ! अबभी कठोर प्राण नहीं निकले, मैंने तो गिरती समय जानाथा कि सब आपत्तियोंसे छूट जाऊगी (रोतीहुई) हाय ! आज मै ऐसी पापिन होगई कि माता पितानेभी निरादर करके निकालदी अब मेरी कौन सुनैगा-हाय ! यह कैसा अनर्थ है धर्म करते दण्ड होता है, हे प्राणनाथ ! आप कहा हो वेग आकर रक्षा करो तुम्हारी प्यारी हायहायकर प्राण तजे देतीहै, इस समय केवल दर्शनोंकी अभिलापासे जीरहीहू, अब सिवाय आपके कोई सहारा नहीं रहा. अरे ! इस उदरके वच्चेकी न जाने क्या दशा होनहार है. अरी सतमाला ! तू मेरे साथ क्यों कष्ट सहती है, अपने माता पिताके घर क्यों नहीं चलीजाती मेरी जैसी दुर्दशा होनहार है हो रहैगी ।

वसंतमाला--आली ! यह क्या कहतीहो मुझसे यह कदापि न होगा मैं ऐसी अधम स्त्री नहींहू जो अपनी प्यारी सखीको दुःख अवस्थामें छोडकर

चलीजाऊं महेंद्र और हृदयवेगा सरीखेही सबके माता पिता नहींहैं इस अवस्थामें तुझे छोडकर गईभी तो घरमें न घुसनेदेगे अब तो सायाके समान तेरा पीछा न छोडूंगी।

अंजना-आपत्तिमें बांधव सब बिलग होजाते हैं और केवल मित्रकाही सहारा होताहै-इस दुःखमें तैनेही मेरा साथ निभायाहै. माता पितानेभी कि जिन्होंने जन्म देकर इतनी बडी करी, बात न पूंछी।

वसंतमाला-हे पतिव्रते! तेरी दीनदशा सूर्यसेभी नहीं देखीजाती अस्ताचलको चलाजाताहै हे अनिंदिते! तेरे नेत्रोंकी लाली देख पश्चिमदिशाभी अरुण हुई जातीहै-हे सजनी! एक समय वह था कि, आपत्ति हमको देखकर डरतीथी परन्तु अब हमको आपत्तिसे डरना चाहिये. हे सखी! निराश मत हो स्त्रीकी बात पूंछनेवाला सिवाय उसके पतिके और कोई नहीं होता. देख तेरे दुःखको निरखके वनके पशु पक्षीभी भयानक हाहाकार शब्द करने लगे हैं यह महाभयकर स्थान है और तेरा प्रसवकाल निकट है उस पर्वततक चल किसी कदरामें बैठकर अपनी रक्षा करेंगे।

अंजना-ऐसे संबोधनोंके योग्य अब मैं नहीं रही अरी! वसन्तमाला अब मुझसे व्यभिचारिणी कह (रोती हुई) अब कहां ले चलैगी मैंतो सर्वथा असमर्थ होगई। -

वसंतमाला-हे सजनी! धैर्यवान् हो दुःख सुख दिन रातकी तरह बदलते रहतेहैं धर्म कभी किसीका नष्ट नहीं होता आज तुझे तीन दिवस निराहार बीतगये यहां सिवाय कांटोंके कुछ नहीं है उस पर्वतपर बडे बडे वृक्ष दिखाई देतेहैं कुछ वनफल मिल जाय तो खालेना--तृषा और क्षुधा सहन करनेसे बालकको परिश्रम होगा।

अंजना—अरी वसंतमाला ! मेरे पाँवोंकी ओर तो देख छाले पडगये और जगह २ काटे छिद गये है कैसे चलू (रोतीहै)

वसंतमाला—(अजनाके ऑसू अपने अचलसे पोछकर) हे सुदरी ! तू भवनकी वासी कभी काहेको कांटोंपर चली है । विपत्ति कालमें विव्हल न होना चाहिये "विपदि धैर्यमथाम्युदये क्षमा" अर्थात् विपद मे धैर्य और ऐश्वर्य पाकर क्षमा चाहिये ।

अंजना—रोती हुई हाय ! मेर कैसे अशुभ कर्मका उदय है. अब किसकी शरण लू और किससे अपना दुःख कहूं, हे नाथ ! आपतो कह-गयेथे कि, गर्भचिह्न प्रगट होनेसे पहिलेही आजाऊगा. हे स्वामी ! अब उस वचनको क्यों विस्मरण करदिया—स्त्री पीहरमे दुःख पावे तो सुसरालको चली जाती है. और सुसराल मे दुःखी हो तो प्योसारको चली जाती है. मेरा दोनो ही ठौरसे निरादर हुवा. अब कहा जाऊ—जिस स्त्रीके शीलमे शका होती है उसकी परीक्षाके अनेक उपाय हैं—हाय ! सासूजीने तो अपने पुत्रसे निश्चय करनाभी स्वीकार न किया माताने नवमास उदरमें रखके जन्म दिया. पिताजीने निरंतर गोदमें खिलाई उन्होंने बात करना भी अगीकार न किया. भ्राता एक उदरसे जन्मे वह भी विमुख होगये. सत्य है आपत कालमे शरीरका वस्त्र भी वैरीहो जाताहै—हाय ! सबकाही ऐसा कठोर चित्त क्यो होगया (रोती है) अरी वसतमाला ! कलेजेमे पीर होती है ।

वसंतमाला—हे सखी ! निरंतर रुदन करनेसे तेरे नेत्र लाल होगये हैं, तेरे करुणामय वचन सुनकर मृगी भी अश्रुपात करती है. हे कमलनयनी ! आँसुओंको रोक और धैर्य धर. रुदन करनेसे क्या होगा. पूर्वोपार्जित कर्मका फल अवश्य भोगना पडेगा. हे देवि ! मनका चीता नही. होता प्रारब्धानु-सार अहित वस्तुकी प्राप्ती और हित वस्तुका वियोग होजाताहै—बाई ! तू

गर्भके खेदसे पीडित है अधिक क्लेश मतकर, तू सर्वगुण सम्पन्न और महाबुद्धिमान् है अपने चित्तको दृढ रख, हे वल्लभे ! यह स्थान निराश्रय है यहां कोई हमारी रक्षा न करैगा, तेरे प्रसूतका समय निकट जान पडता है, अरी ! साहस पकड उठ और इस पहाडकी कंदरा तक चल (हाथ पकडके उठातीहै)

अंजना--(उठकर आंसू पोंछतीहुई) अरी वसंतमाला ! तू मेरी बचपनकी सहेली है तेरे वचनका निरादर नहीं करना चाहती--अरी ! मेरे शरीर पर भी मेरा अधिकार नहीं बाल हत्यासे डरतीहूं वरन् चोलाको छोड तुझसे आगे चलती (चलती हुई) चल कहां चलैगी• गर्भके भारसे चला नहीं जाता हौले हौले चलतीहू ।

वसंतमाला--(अञ्जनाका हाथ थामे हुए चलतीहुई) आली ! यहाँ अजगर बहुत फिर रहेहैं छोटे छोटे जीवोंको दुःख देनेवाले सिंह व्याघ्रादि महाभयानक शब्द कररहेहैं-वृक्षोंके झुंडसे चन्द्रमाका प्रकाशभी नहीं आता प्यारी सूईकी अनीसमान तीखे कांटे तेरे पगोंको बेधते हैं, यह अगम्य जगल है, हे स्वामिनी!भयभीत नहो मेरे सगसग चलीचल,देख इसटीलेपर हौलेसे पॉव धरियो।

अंजना--(एकसाथ भयसे काँपतीहुई रोकर) अरी ! ठहर मेरी सारी किसने पकडली ।

वसंतमाला--हे सजनी ! भय मतकर इस बेलमें उलझ गई है सुलझाये देतीहूं (साडीको सुलझाकर) थोडीदूर और है साहस बांधे चली आ ।

अंजना--(व्याकुल होकर बैठजाती है) अब मुझे यहीं पडी रहनेदे चलनेकी सामर्थ्य नहीं यदि कोई व्याघ्रादि आकर मुझ अभागिनीको भक्षण करले तो उसका उदर पोषण तो भी होजाय (रोती है)

वसंतमाला--(अञ्जनाकी ठोढी पकडकर) हे देवी ! वह देख कंदरा निकट है कृपाकरके उठ और वहांतक चल हे कल्याणरूपे ! चिंताको छोड

और अपनी प्रारब्धपर प्रसन्न होकर धैर्य धर, यहां बहुतसे क्रूरजीव हैं, हे वल्लभे! गर्भके बचेकी रक्षा करना स्त्रीका धर्म है, हठ मतकर आ मेरी पीठपर बैठ ले।

अंजना–अरी तैंने मेरा बडा साथ निभाया है, तेरे निकट होनेसे सर्व कुटुम्ब मेरे पास है और यह वनभी नगरसमान भासता है, जो आपत्तिमें सहाय करै वही परमबांधव है और जो बांधव सुखमें दुःखका कारण हो वही परमशत्रु है. तुझे यथाशक्ति दुःख नहीं देना चाहती (वसन्तमालाके गलेमे हाथ डालकर उठती हुई) अरी! मेरी आंखोके आगे अंधेरा हुआजाता है।

वसंतमाला–(अंजनाको थामकर चलती हुई) प्यारी! सावधान रह, यह समय विह्वल होनका नहीं है, देख कल्पवृक्ष पवनके झकोरोंसे नहीं गिरता, यदि शरीर रहैगा तो फिर कभी सुख और आनन्दकी प्राप्ति होगी, विद्वानोंको धर्म अर्थकी चिन्ता प्रत्येक अवस्थामें रखनी योग्यहै, इस शिलापर वैठकर थोडा विश्राम करले (दोनों बैठगई)

दोनों–(रोतीहुई)

दोहा–"हाय हाय कर रोवती, तुम प्यारी प्राणेश।
गिरै पडे घन वन फिरै, व्याकुल विथुरे केश॥
हमारे नाथहो प्यारा, करौ अब आन निस्तारा।
हमारा कौन रखवारा, डरातीहैं सघनबनमें॥
निकाला हमको सासूने, पिता माता भ्राताने।
केवल आधार तुम्हारा, लगीहै आग तन मनमें।
किया अपराध ऐसा क्या, न कोऊ हमको अपनाया।
कहैं हम किससे दुख सारा, फिरैं रोतीहैं वन वनमें॥
अकेली हम फिरैं अबला, प्राण अब चाहते निकला।
निरंतर बह रही धारा, लडोहो तुम प्रसन्न रनमें" ॥

वसंतमाला–(आली ! तू यहीं बैठीरह पहिले मैं जाकर इस गुफाको देख आऊ कोई मांस आहारी जीव न बैठाहो (जाकर देखतीहुई) अरी अंजने यहा आ देख यहां पवित्र शिलापर एक साधू महात्मा विराजे हुयेहैं, आत्मस्व रूपके ध्यानमें मग्न होरहे हैं।

अंजना–(निकट जाकर देखतीहुई) महाराज तो बडे तपस्वी जानपडतेहैं।

दोनों–(हाथ जोडकर) हे भगवन् ! हे कल्याणरूप ! उत्तम चेष्टावान् !

कुंडलिया।

"उपकारी तारन तरन, कृपासिंधु प्रतिपाल ।
दानी ध्यानी अतिबली, दीनदयालु कृपाल ॥
दीन दयाल कृपाल, कृषी दुख विपता भजन ।
चिदानद स्वरूप, दिव्यदर्शन मन रंजन ॥
योग कला परवीन, दुखिनके सदा सहायक ।
(दण्डवत करतीहुई)
प्रणवै वारम्बार, धर्मके रक्षक नायक" ।

हे स्वामी ! यदि आपका दर्शन औरोंकी कुशलका कारणहै, परंतु अपना धर्म जानके शरीरकी कुशल पूँछतीहैं ।

साधू–हे पतिव्रते ! हमारे कर्मानुसार सब कुशलहै कर्मकी विचित्रता ऐसीहीहै तू राजामहेंद्रकी पुत्री बिना अपराध कुटुंवका अपमान सहकर वन वन भटकती फिरतीहै ।

वसंतमाला–(हौले अंजनासे) महाराजको अवध और मनपरयव ज्ञानभीहै।

अंजना–परिश्रमसे कैवल्यकीभी प्राप्ति होसकतीहै ।

वसंतमाला–(साधूसे) महाराज ! आप सर्वगुण सम्पन्न जानपडतेहैं और महापुरुष पराये उपकारमें अपना आनंद मानतेहैं, हे बुद्धिके सागर !

हमारी सखी क्यो ऐसे कष्टमें पडीहै कब इसका कष्ट निवारण होगा, नजाने कौन पापीका जन्म होनेवाला है जो पहिलेहीसे ऐसे दुःख दिखारहाहै ।

साधू--हे वसंतमाला ! अंजनाके महापराक्रमी और प्रतापवान् पुत्रका जन्म होगा, यह दुःख इसके प्राचीन कर्मका फल है कुछ चिंता मतकर थोडे कालमे इसका सर्व कष्ट निवारण होजायगा, परिणाममें सदा धर्मकी विजय होतीहै (अंजनासे) हे भव्य ! खेदित मत हो मनवांछित फल तुझे शीघ्र प्राप्त होनेवालाहै अधैर्य न हो,) उठकर एक ओरको जाताहै ।

अंजना--(गुफामें प्रवेश करके लेट जाती है) अरी ! मेरा चित्त घबडाताहै ।

वसंतमाला--धैर्यधर (सिंहकी गर्जना सुनकर कांपतीहुई) हाय ! हाय ! ! अब क्या करू अरी अंजना ! तुझे कहाँ छुपाऊ--हाय ! इस दुष्टसे कैसे तेरी रक्षा करूं, हे सखी ! तू बाहर मत निकसियो, यह दुष्ट मेरा भक्षण करके लौटजायगा हाय ! दुखियाको सब जगह दुःखही होताहै अरे ! रे ! रे !!! यह तो चलाही आताहै-हाय ! (सिंह वसंतमालाको मुँहमें पकडकर एक ओरको जाताहै)

अंजना--(भयसे गर्भपातहो गिरती पडती गुफासे निकल दहाड मारकर) हायरे ! हाय ! ! यह कैसी भई (रोतीहुई) पहिले तो पतिने तिरस्कार किया यदि वे प्रसन्न हुए तौ सास श्वशुर और माता पिताने वनका वासदिया. प्यारी वसंतमालाके निकट होनेसे सब कुछ सहा-हाय ! अब इस अगम्य जंगलमें अकेली अबला क्या करूगी (पहाडकी एक शिखरपै चढकर गिरना चाहतीहै

(नेपथ्यमें)

हे स्त्री ! ठहरजा--ऐसा साहस मतकरै-सिंहको बाणसे छेदकर तेरी सहेलीको जीती छुडालायाहूं ।

अंजना-(चकितसी होकर) यह कौन वीर है जो अपनी जानपर खेलके इस घोर विपत्तिमें हमारी सहायता करताहै ?

(एक ओरसे एक वीर पुरषका वसतमाला और एक दूसरी स्त्री सहित प्रवेश)

अंजना-(दौडकर वसंतमालाके गले लिपटती हुई) आली ! तूभी मुझे छोडगई (आंसू टपकतेहैं)

वसंतमाला-(वीर पुरुषकी ओर सकेत करके) अंजना ! इनको धन्य-वाद दे--इन्होंनेही, अपनी शूरताके वलसे उस दुष्टसे मेरे प्राण बचाये हैं, अरी ! क्या तू आत्मघात करनेको तत्पर होगई, यह भी शोच न किया कि, तेरे वियोगमे पवनजयकी क्या दशा होगी।

वीर पुरुष-(आश्चर्यसे अंजनाको देखता हुवा) हैं ! अंजना ! पवन-जयकी स्त्री महेंद्रकी पुत्री ! यह क्या ? अंजना ! यहां कैसे ? इस सघन वनमें रात्रि समय है ! क्या ? कोई रक्षक भी साथ नहीं ? (अजनाको छातीसे लगाना चाहताहै) वेटी तू यहां कैसे ?

अंजना -(ठिठककर) हे सज्जन ! पहिले अपना नाम और पता वतावो ? आपने मेरी और मेरी सखीकी सहायता की इसका मैं धन्यवाद देतीहू परतु, "वेटी" कहनेका कारण नहीं जानती (स्वयम्) मनुष्यको निश्चय किये विना अपना भेद न देना चाहिये, कदाचित् केतुमतीनेही हमारे इस घोर सतापसे सतुष्ट न होकर विशेष दुःख देनेके लिये इनको भेजाहो ।

वसंतमाला-हे महानुभाव ! आपके वचनसे मनकी शुद्धता और सज्जनता प्रगट होती है आप किस वशके भूषण और किस देशके नरेश हैं ! हमपर कृपा करनेका क्या कारण है ?

वीर पुरुष--संसारमें सर्व प्रकारके मनुष्य वसते हैं, यह प्रश्न तुम्हारा यथार्थ है (अंजनासे) पुत्री ! क्या मुझे भूलगई ? मैं हृदयवेगा का भाई

प्रतसूर्य हू (दूसरी स्त्रीको बताकर) और यह तुम्हारी मामी है, मै तेरे विवाह समय भी मानसरोवर पर उपस्थित था ।

अंजना--(भलीभाँति देखकर प्रतसूर्यसे गले मिलतीहै, मामाजी ! अपराध क्षमा करना, हमने आपको नहीं पहिचाना इस समय हमारी बुद्धि स्थिर नहीं (सुशीलाके पैर छूतीहुई) मैं नम्रतापूर्वक प्रणाम करतीहू (गुफामें जाकर बालकको गोदमें उठालाती है)

प्रतसूर्य--अरी अजना ! क्या यह तेरा पुत्र है ? (बालक को गोदमें लेकर) इसका उन्हारा तो साक्षात् पवनजयसे मिलता है सत्य है पतिव्रता स्त्रीके पतिके सदृशही पुत्र उत्पन्न होता है यह तो हालका जन्मा जान पडता है (घबडाकर) अब मेरा चित्त विह्वल होता है इस आपत्तिका कारण जल्दी सुनावो ? अरी अजने ! अब क्यो रोती है धैर्य धर, क्या तेरे पतिने वनबास दिया है ?

अंजना--मामाजी ! (आंसू पोंछतीहुई) उन्हे क्यों दूषण लगाते हो ? यह सब मेरेही अशुभ कर्मका फल है, आपका यहांतक कैसे आगमन हुआ ?

प्रतसूर्य--मै अपनी भार्या सहित तीर्थयात्रा करके इस मार्ग होकर अपने द्वीपको जाता था एक सिंहके मुँहमें स्त्रीको देख अनुकम्पा आई और विमानपरसे बाणमारकर इसके प्राण बचाये अब शुभ प्रारब्धसे तुझसे भेंट हुई ।

अंजना--(वसन्तमालासे) आली ! (देखतीहुई) कहीं उस दुष्टके दांत तो नहीं लगे ।

वसंतमाला--दैव इच्छासे पत्रही उसके मुँहमें आये और इनकी कृपासे जान बच गई ।

अंजना--(बालकको प्यार करतीहुई आंखोंमें आंसू भरकर) अरी ! वसन्तमाला ! अब मैं क्या करू ? यदि आज यह बालक अपने दादाके घर उत्पन्न होता तो कैसा हर्ष प्राप्त होता ।

वसंतमाला-आली ! पूर्ण चन्द्रमाको देख कौन हर्षको प्राप्त नहीं होता और सूर्यको देख कौन कमल नहीं खिलता ? तेरा पुत्र चिरंजीव रहै और दीर्घायू हो कभी जन्मोत्सव भी होजायगा, हे अनिंदिते ! अब चिंताको दूरकर और हर्षपूर्वक मामा मामीसे मिल ।

प्रतसूर्य—अब तुम मेरा सन्देह दूर करो, अंजनाके आंसू क्यो बन्द नहीं होते?

वसंतमाला—हे सज्जन ! अग्निविना धुवॉ नहीं उठता और विना आपत्ति कोई नहीं रोता हम दुखियां त्रिपताकी मारी इस वनमें पडी है हमारा दु:ख अभीतक किसीने नहीं पूॅछा यदि आपको सुननेकी इच्छा है तो कहती हू सुनिये—(आंसुओसे कंठ रुकताहै)

सुशीला—हे सुंदरी ! मैं जानतीहूं कि, केवल तैंनेही इस अवस्थामें अंजनाका साथ दियाहै, धैर्यधर और अपनी व्यवस्था कह (अजनासे) बेटी अब कुछ शोच मतकर यदि हमारे वशकी वात है तो यथाशक्ति तेरे सकट निवारणमे प्रवृत्त हैं, अपना दुखड़ा कह ?

वसंतमाला—महाराज ! यह तो आप जानतेही हैं कि, हमारी सखी महेन्द्रपुराधीशकी पुत्री और आदित्यपुरके राजा प्रह्लादके पुत्र पवनजयकी भार्या है, विवाह उपरान्त बहुत दिवस तक भर्ताका स्नेह इस अभागिनीको प्राप्त न हुआ । राजा वरुणके विरुद्ध रावणकी सहायतार्थ पवनजयने जिस दिन युद्धक्षेत्रको पयान किया उसीदिन शुभ प्रारब्धसे कुॅवरजी अपनी पतिव्रता प्रियापर प्रसन्नहुये और गोप्यभवनमे सिधारकर कुन्दकलीको प्रफुल्लित किया. हाय ! इस विचारी दुखियाको केवल एक रात्रिके सुखके पलेट यह घोरकष्ट सहना पढा. उनके प्रस्थान उपरात जब अञ्जनाके गर्भ-चिह्न प्रगटहुये तो केतुमतीने विश्वास न करके हमारी सखीका निरादर किया. माता पिताने भी अपयशके कारण छातीसे न लगाया. सज्जन पुरुष झूठे दोष-

सभी डराकरते हैं आज इस अवस्थामे इस पुत्रका जन्महुआ (आसू भरकर) हाय ! इस अवलाका कैसा भाग्य है ?

प्रतसूर्य—(अजनासे) हे सुशीला ! मुझे तेरे पतिव्रत मे किंचित्भी सन्देह नहीं, जिस निरपराधीको अनर्थदण्ड दियाजाताहै उसे शोकवानहो सिवाय विलापके और कुछ नहीं सूझता और निराश रोरो भीतरही भीतर धुधका करताहै और अपराधी दड पाकर अपने कर्तव्यका फल जान सन्तुष्ट हो भुगतता है और विशेष करुणा नहीं करता पुत्री ! रोते तेरे नेत्र लाल होगये हैं और कपोल मुरझाय गये है अब धैर्यधर. इस वालकको देख निश्चयसे तो कह सकताहू कि, यह पवनजयका ही पुत्रहै—केतुमतीकी क्रूरता मैं भलीभाँति जानताहू परन्तु हृदयवेगाकोभी क्या होगया जो अपने उदरसे उत्पन्न बच्चेको ऐसे कष्टमे डाला ।

अंजना—मामाजी ! कुछ किसीका दूषण नहीं कर्मानुसार कार्य होतेहैं यदि प्राणनाथ युद्धको न चले जाते तो क्यों मेरी यह दशा होती मृगसे बिछुडीहुई मृगी ऐसेही वनवन भटकती फिरती है (प्रतसूर्यकी उगलीमें मुद्रिका देखकर) यह मुद्रिका तो प्राणनाथकी है आपको कहासे मिली ?

प्रतसूर्य—एक समय मिश्रकेशी नाम एक स्त्री मेरे पास इस मुद्रिकाको बेचने लाईथी मैंने पवनका नाम इसपर देखकर लेली ।

अंजना—(चकितसी होकर वसंतमालासे) यह उस चाडालिनीके कैसे हाथलगी ?

वसंतमाला—हमारी सहेली चन्द्रका उसकी बहनहै कदाचित् उससे मिलकर यह कर्तब कियाहोगा (प्रतसूर्यसे) हे राजन् ! आपकी भानजी

अजना महासती शीलवती और प्रतिव्रता स्त्रीहै—यह वडे कुलकी वालिका सर्व अवलम्बनराहित इस वनमे दुखी फिरती है, अत्र जानाजाताहै कि इसके पूर्वोपार्जित कर्मका दूषण निवृत्त हुवा और गईहुई मुद्रिका मिली और आप सरीखे सज्जनसे भेंटहुई।

अंजना—मामाजी ! इस घोरविपत्तिमें केवल वसंतमालानेही साथ दियाहै।

वसंतमाला—अरी ! यह क्या कहती है मेरा तेरा वाल्यावस्थाका साथ है भला इस विपत्तिमे कैसे छोडदेती ! तैने अपना धर्म निभाया तो मै अपना क्यो त्यागने लगी।

(नैपथ्यमे वाजेके साथ)

राग भैरों।

"तेरे गुणको पार नपायो।

कोऊ कहतहै अलख अरूपी, कोऊ कहत तू जननीको जायो।
अरहं अरिह शिव शकरपति, सूत्र वेद विच गायो॥
सुरपति सुरगुरु नर मुनि सवही, वहु विधि तोको नायो।
कृपादृष्टि जो करी दासपै, गुण गावनको धायो"॥

सुशीला—अहा ! इस वनमे यह मधुरधुनि कहांसे सुन पडतीहै, ऐसी लालित्यताके साथ कौन गान कररहाहै ?

वसंतमाला—वनीका गान्धर्व अजनाका पुत्र जन्म सुनकर स्तुति करताहै।

प्रतसूर्य—अव पूर्वदिशाने अरुणरूप धारण किया और दिवस भूषण दिवाकर कुमोदनीको सुलाने और कमलको जगाने चला आताहै अव यहा विशेष ठहरना योग्य नहीं।

(रत्न चूलाका प्रवेश)

रत्नचूला—(प्रतसूर्यसे) हे सज्जन ! मैं इस वनकी गधर्वीहू, इस वनमे मासाहारी जीव बहुत निवास करतेहै और मेरे स्वामीको गान विद्यासे बहुत थोडा अवकाश मिलताहै यहॉ इसकी रक्षा करनेहारा कोई नहीं इससे यही उचितहै कि, इन स्त्रियोंको तुम अपने सग लेजावो ।

प्रतसूर्य—हे देवी ! म आपके इस अनुग्रहका धन्यवाद देताहू ।

रत्नचूला--अब मैं अपने स्थानको जातीहू (चलीगई)

प्रतसूर्य- (अजनासे) बेटी ! यह वन तेरे रहने योग्य नहीं अपनी सखी समेत विमानपर बैठ और जबतक तेरा पति युद्धक्षेत्रसे आवै अपनी मामी के निकट आनदपूर्वक निवास कर ।

अंजना—(आसू डबडबाकर) आनद तो उस दिन होगा कि जब मेरा सतधर्म प्रतीत होजायगा परन्तु आपने इतना अनुग्रह कियाहै तो आपकी आज्ञाका उल्लघनभी नहीं करना चाहती चलिये(सब विमानपर बैठ आकाशमार्ग चलतेहुए बालक उछलकर पर्वतपर गिरताहै)हाय ! बेटा ! बेटा ! ! हाय ! हाय ! ! रे यह क्या ? अभीसे ऐसा छल कहासे सीख लिया (रोतीहै) ।

और सब—(चिल्लाकर रोते हुए) हाय ! हाय ! यह क्या हुवा ? कौनसा पापकर्म उदय हुआ (विमानको नीचे-उतारते हुए) अरी अजना तेरा कैसा भाग्यहै ।

अंजना—(रोतीहुई) हे दैव ! रत्नराशि देकर फिर क्यों हरली. हाय ! कच्चाफल तोडनेसे कुछ फल नहीं मिलता केवल बीजका नाश होताहै. हे बेटा ! पतिवियोगमें तेराही सहाराथा, मैंतो आशा कररहीथी कि एकसे दो हुए तो तीसरेभी आही मिलैंगे ।

दोहा–"जो मैं ऐसे जानती, बेटा करै न नेह।
काहे कष्ट उठावती, तबही तजती देह॥

हे पुत्र! क्या पर्वतही तुमको प्याराहै जो इसे छोडना नहीं चाहते हा शोक! हा शोक!! अब मैंभी अपने प्राण इस पर्वतपरही तजदूंगी (मूर्च्छित होजातीहै।

(विमान पर्वतपर उतरा)

प्रतसूर्य–(बालकको पर्वतपर अँगूठा चोसता देख आश्चर्यपूर्वक) हे दैव! यह क्या आश्चर्यहै? रात्रिका भया बालक इतने ऊंचेसे पर्वतपर गिरा और आच न आई यह तो बडा पराक्रमी जान पडता है (बालकको गोदमें उठा छातीसे लगा शिर चूमता हुवा) अरी अंजना! तेरा पुत्र बडा प्रतापी होगा, ले अपने बेटेको गोदमें बिठा।

अंजना–(सचेतहो पुत्रको छातीसे लगा गद्गदवाणीसे) तो अब निश्चय हुवा कि मेरा संकट निवारण होनेवाला है, मामाजी! मैं सावधानहूं विमानको ऊर्ध्वगामी कीजिये।

(सब जाते हैं)

द्वितीय गर्भांक।

(स्थान महेन्द्रपुरका राज्यभवन.)

[राजा महेन्द्र, प्रसन्नकीर्ति, विदूषक और अमरसागरका प्रवेश.]

महेन्द्र–(अमरसागरसे) कुछ लंकापति रावण और वरुणके युद्धका समाचार भी तुमको सूचित है उसका क्या परिणाम हुआ?

अमरसागर–(हाथ जोडकर) हा महाराज! जानताहूं, रावणकी विजय हुई और वरुण परास्त हुआ सर्व धनकी मूल पृथ्वीही है देखिये श्रीमहाराज! इस पृथ्वीके हेतु कैसे २ पृथ्वीपति अपने प्राण तक दे देते हैं।

विदूषक–कभी रावणका पिता विश्रवा भी वरुणसे बाजी पाता यह भी पवनके प्रतापसे उसका सुयश होगया।

[द्वारपालका प्रवेश]

द्वारपाल–श्रीमहाराजका अखण्ड प्रताप हो महाराजा प्रह्लादजीके राजकुँवर अपने मित्र सहित महाराजसे भेंट करने आते हैं अभी कुछ दूर हैं आ रहे हैं।

महेन्द्र--(प्रसन्नकीर्तिसे) पुत्र ! तुम वेग जावो और कुँवरजीको यथायोग्य आदरपूर्वक लिवालावो।

प्रसन्नकीर्ति--जो आज्ञा पिताजी (जाता है)

महेन्द्र--(स्वयम्) हाय ! मेरी बेटीने कैसा मुझे लज्जित किया है अब पवनजयसे क्या कहूगा (मन्त्रियोंसे) महाशय ! अब आप फिर कृपा करना।

दोनों मन्त्री–(उठतेहुए) प्रणाम श्रीमहाराज (चलदिये)

अमरसागर–(हौले विदूषकसे) पवनजयका आगमन सुनतेही न जाने महाराजका मुख क्यो फीका पडगया।

विदूषक–(हौले अमरसागरसे) अभी क्या है मुख तो आगे आगे फीका पडैगा देखैं पवनजयको क्या उत्तर देते हैं ?

(दोनों जाते हैं)

महेन्द्र–(द्वारपालसे) तुमभी जावो, सुलक्षणासे कह देना कि, महारानीजीको एक अवश्य कार्यके निमित्त महाराज याद करते हैं।

द्वारपाल–जो आज्ञा श्रीमहाराज (जाता है)

(प्रसन्नकीर्तिका प्रवेश)

महेंद्र–क्यों पुत्र कैसे लौट आये उदासीन कैसे होरहे हो, पवनजय कहां हैं।

प्रसन्नकीर्ति–(आखोंमें आसू भरकर) पिताजी ! क्या निवेदन करूं कहतेहुए कण्ठ रुकता है वडा अनर्थ हुआ।

महेंद्र–क्या है वेटा ! कहो तो ! क्या हुआ ?

प्रसन्नकीर्ति–पवनजय निराश लौटगये।

महेन्द्र--क्यो ? क्या यथोचित आदर सन्मान न हो सका ?

[हृदयवेगाका प्रवेश.]

प्रसन्नकीर्ति--नहीं पिताजी ! वह आदर सन्मानके कांक्षी नही थे भेट होतेही उनके मित्रने अजनाका व्यौरा पूंछा हाय ! मेरी सहोदरको वृथा कलंक हुआ, मैने कह सुनाया, सर्व वृत्तात सुनकर पवनजय अति व्याकुल हो पृथ्वी-पर गिरपडे, उनके मित्रने सॅभाला और प्रिया ! प्रिया ! हाय प्रिया !! करते-हुए लौटगये हा शोक ! हा शोक !! न जाने प्यारी वहिन किस दशामे है जीतीहै अथवा मरगई (माथेसे हाथ लगा रोताहै) ।

हृदयवेगा--क्या पवनजय आयेथे ? प्रसन्नकीर्ति ! क्या तुम उन्हीका वृत्तात कह रहे हो ?

प्रसन्नकीर्ति--(आसू पोंछकर) हा माजी ! अजनाको अनर्थ दड हुआ।

हृदयवेगा–हाय ! अव मैं अपनी प्यारी वेटीको कहा पाऊ--विना विचारे उस विचारीका निरादर हुआ (आसू वहाती हुई) हे प्राणनाथ ! जैसे वनै एक वेर मेरी सुताको मुझसे मिलाइये हाय ! उस विचारी दीन अवला भोरी भोरी कन्याने न जाने कैसे कष्ट उठाये और उठारही होगी-न जाने विपताकी मारी कहां फिरतीहै (रोतीहै) ।

महेंद्र–प्रिये ! विना विचारे कार्य करनेका परिणाम वहुधा पछतावाही होताहै अव शोकको छोडो चलो कहीं हेरेगे. विचारी यहा आई उसका मुखभी नहीं देखा और अव पवनजयके दर्शनका लाभभी नहीं हुवा-हाय ! मेरी बुद्धि कैसी भंग होगई-सत्यहै "विनाशकाले विपरीतवुद्धिः" । (सब जातेहैं)

तृतीय गर्भांक ।

(स्थान सघन वन)

[पवनजय और प्रहस्तका प्रवेश.]

पवनजय--(आँखोंमें आसू भरकर) मित्र ! अब मेरे जीवनकी आशा मतकरो—बिना प्रियाके मैं राज्यादि किसीकी इच्छा नही करता—विना प्राणप्यारीके सारा जग शून्य भासता है—कहीं चित्त नही लगता—अब तुम मुझे इसी वनमें रहने दो और माता पितासे जाकर कहदेना कि विना अजना सुदरीको साथ लिये मुख न दिखाऊंगा और उस मृगनयनीसे मिलाप न हुआ तो इसी वनमें अपने प्राण तजदूगा ।

प्रहस्त—हे पवनजय ! ऐसे निराश क्यो होते हो इस पृथ्वीका विस्तार कुछ वहुत नहीं यदि उस सुशीलाने तुम्हारे विरहमें प्राण त्याग नहीं किये तो, ठीक करही लेगे परतु यह नहीं होसकता कि इस सघन वन और ऐसी आपत्तिमे तुमको छोडकर चला जाऊ—धैर्य धरो ।

पवनजय—प्रहस्तजी ! मैं बहुतेरा मनको थामताहू परतु उस प्रियाके पीछेही दौडनेको प्रेरणा करता है हाय ! जन्म भरमे केवल एक रात्रिकाही सुख उस कमलनयनीको प्राप्त हुआ—मुझे यही बडा सशय है कि, यदि वसतमालाभी उससे बिलग होगई तो न जानें वह गर्भिणी किस विपतामे पडी होगी वह राजकुमारी भवनोंकी वासी न जाने कहां बनबन कांटोंपर फिरतीहै—सिंघोंकी नाद और बनके भयानक शब्दोंसे अवश्य उसका गर्भपात होगया होगा (रोता हुआ) हाय ! न जाने मेरी सन्तानभी किस दशामे है यदि नदीमें उतरते हुए जलचरोंने सताई तोभी उस प्रियासे इस भवनमें मिलनेकी आशा नहीं—उस अबलाके कोमल चरणोंकी डावसे चिरका

क्या दशा हुई होगी हाय ! उस सुन्दरीका शरीर तो महा दुर्वल होरहाहै कैसे इन पर्वतोपर चली होगी. हे प्रहस्तजी ! मैं कहांतक कहूं कंठ रुकताहै प्राणप्यारीके दुःखकी कथा नहीं कही जाती. यदि पहिलेसेही मैं अपनी पति-व्रता स्त्रीका निरादर न करता तो काहेको वह विचारी मेरे विरहका क्लेश सहती, काहेको उसे झूंठा कलङ्क लगता, काहेको इस मृगलोचनीको वनोवास होता. और काहेको मुझे यह संताप उस मृदुबैनीके वियोगका उठाना पडता, हे मित्र ! तुमने तो पहिले भी वहुत समझायाथा परन्तु न जाने मेरीही बुद्धिपर क्या पत्थर पडे तुम्हारे कहनेका विश्वास न किया. माता पिताके वचनोकाभी जो उन्होंने प्रियापर अनुग्रह करके कहे अपमान किया और ऐसी सुशीला धार्मिक और पतिव्रता स्त्रीको कष्टमे डाला (रोता हुवा) अजी ! उस गज-गामिनीने तो चलती वेर कहाथा कि, आजकी व्यवस्था माता पितापर सूचित करजावो, परन्तु उससमय लज्जाका आवरण आगे आगया और कुछ न कहने दिया । हाय ! उसकी सखी मदनिका और स्वयम् उस सभवाका निरादर करना मेरे चित्तसे विस्मरण नहीं होता और तीक्ष्ण बाणकी नांई वेधताहै--अरे अपना वचनभी न निभासका चलती बेला कह आयाथा कि, गर्भचिह्न प्रगट होनेसे पूर्वही आजाऊंगा सोभी संग्रामसे अवकाश न हुवा अव उस प्रियाका किससे पता पूँछूं और कहां ढूंढूं--ऐसी सती स्त्रीको दुःखरूपी कूपमें डालकर मेरा जीतव्यभी धिक्कारहै-हे प्रहस्त ! तुम यदि मेरे परम मित्र हो तो आदि-त्यपुरको जावो और माता पितासे यह समाचार कह सुनावो और यह भी विनयपूर्वक निवेदन करदेना कि, यदि अपने पुत्रका जीतव्य चाहतेहैं तो प्यारी अंजनाको ढूढैं और यदि मेरे प्राणत्याग उपरांत उस प्राणवल्लभाका पता मिलै तो मरे ऊपर अनुग्रह करके यथाशक्ति उस अवलाको और यदि मेरी संतानभी सजीव मिलजाय तो उसको दुःखी न होने दे-उन्होने वडा

कष्ट उठाया है (माथेसे हाथ लगाकर रोता है) हे मित्र ! उस सुदरीके दुःखों को याद करकरके कलेजा फटा जाताहै ।

प्रहस्त--पवनजी ! आज तुम कैसी कैसी बातें करते हो रणमें वह धीरवीरता दर्शाई अब क्या होगया धैर्य धरो-तुम मुझे इससमय जानेकी आज्ञा करते हो सो मेरा जी नहीं चाहता परन्तु तुम्हाराही कार्य है इसलिये तुम्हारी आज्ञाकी अवज्ञाभी नहीं करसकता यदि इस बातका वचन दो कि जबतक मैं फिर न आऊ तुम इसी वनमें निवास करो और अन्यथा अपने मनको चलायमान न होने दो तो मैं जानेको तत्परहूं—किसी कविने कहाहै ।

- **चौपाई**—"धीरज धर्म मित्र अरु नारी ।
  विपत पडे पै होय सुखारी " ॥

पवनजय—हे मित्र ! मैं उसी प्रियाकी शपथ खाकर कहताहू कि, जिसके विरहमें मेरी यह दशा है कि मैं स्वेच्छासे तुम्हारे लौटनेतक यहीं रहूगा और यदि वनके जीव जतुंवोसे प्राण बचे रहे और उस प्रियासे मिलाप न हुवा तोभी तुम्हारे लौटनेतक इसी देहमें रहूगा ।

प्रहस्त—अच्छा पवनजी ! तो अब मैं जाताहू तुम धैर्य धरो मेरे आनेतक उस पर्वतकी कदरामे रहना—इस नदीसे जलपान और वृक्षोंसे फल फूल लेकर अपना जीवन निर्वाह करना तुम्हारे पिताजीको तुम्हारा पता न देकर यही कहूंगा कि, तुम्हारा प्यारा बेटा प्रियाके बिरह में न जाने कहा बन बन भटकता फिरता है मुझसेभी बिलग होगया और तुम्हारे खोजनेके मिससे उनको साथले अंजनासुन्दरीको ढूंढूंगा (जाताहै)

पवनजय—अब अधकार होता आता है मैंभी चलकर कंदरामें बैठूं ।

(जाताहै)

चतुर्थगर्भांक।

(स्थान हणरूहद्वीपका राज्यभवन.)

[प्रतसूर्य, सुशीला वसंतमाला और अंजनाका पुत्रको गोदमें लियेहुये प्रवेश]

प्रतसूर्य–(सुशीलासे) आज एक प्रह्लादके दूतद्वारा समाचार मिलाहै की पवनजय सग्रामभूमिसे विजयपूर्वक लौटकर जब अपने घर आये तो अंजनाको वहा न पाकर अति शोकग्रस्तहो महेद्रपुर पहुँचे और जब वहांभी अपनी प्राणवल्लभाको न पाया अति व्याकुलहो वनकी ओर लौटगये और यह निश्चय करलियाहै कि यदि अजनासे मिलाप न होगा तो प्राण त्याग करदूंगा।

अंजना–(घवडाकर) मामाजी! यह समाचार आदित्यपुरतक कैसै पहुँचा?

प्रतसूर्य–बेटी! उनका कोई मित्र प्रहस्तहै उसने आकर यह सारा वृत्तात महाराजा प्रह्लादको सुनाया तव केतुमती अपने कर्तव्यपर बहुत पछताई और स्वयम् वे दोनो प्राणी अपने पुत्रके वियोगसे-व्याकुलहो पवनजयको ढूँढने निकले हैं और उनके और तेरे खोजमें स्थान स्थानको दूत पठायेहै उनमेसे एक दूत मेरेपासभी आया और यह हृदयविदारक वृत्तात कहसुनाया।

अंजना–वह वनखंड कहा है कि जहां प्राणनाथ मुझ दुखियाको याद करतेहुए विचरते है?

प्रतसूर्य–यह तो कुछ उस दूतसे पता नहीं चला महेंद्रपुरके समीप जो कई योजनका वनहै उसीमे कही पवनजय होगे।

अंजना–(रोतीहुई) हाय! क्या उनका मित्रभी ऐसे समयमे उनसे विलग होगया-मैं कैसी मंदभागिनीहूं अवतक तो इस आशामें जी रहीथी कि प्राणनायसे फिर मिलकर मेरा झूंठा कलंक दूर होजायगा--हा शोक! हा शोक!! मुझ अभागिनीके कारण अब प्राणपतिकोभी संशय प्राप्तहुवा (दहाड

मारकर) हाय ! अब उस वनमे कौन उनको यहाका पता देगा-हे प्राणनाथ ! एकबेर अपने प्यारे पुत्रपर तो प्यार करलो और इस निराश दासीपर अनुग्रह करके दर्शन दो (रोतीहै) ।

वसंतमाला-हे सजनी ! ऐसे अमंगल वाक्य अपने मुखसे मत निकालो तुमको धर्म करते सकट हुवाहै इसका परिणाम अवश्य शुभ होगा ।

सुशीला-(प्रतसूर्यसे) हे प्राणेश ! अब अजना आपकी शरणहै और इसका उद्धार करनाभी आपका परमधर्म है सर्व परिवारसहित चलिये वनका विस्तार कुछ विशेष नही चलकर पवनजयको हेरिये (अंजनासे) बेटी ! व्याकुल मतहो और आसुओंको रोक तुझे तेरे प्राणपतिसे मिलानेका उपाय करतीहैं ।

अंजना-(प्रतसूर्य और सुशीलासे) भर्ताके वियोग होनेसे सास श्वशुर माता पिता और भ्राता सबही विमुख होगये केवल आपने इस घोर विपत्तिमे मेरी सहायता की, अबभी यह पुत्र मैं और मेरी सखी हम तीनों प्राणी आपके अधीन हैं यदि होसके तो कुछ उपकार कीजिये वरन् अब हमारा जीतव्य धिक्कार होजायगा ।

वसंतमाला-आली ! ऐसा विचार मतकर पवनजी तेरे मिलापकी आशामें जीरहेहैं ।

प्रतसूर्य-(सुशीलासे) यह तुमने अति उत्तम सम्मति दी मैंभी ऐसाही विचारकर रहाथा (अजनासे) पुत्री ! धैर्यधर उपाय करतेहै यदि तेरी विपत्तिका अत आगयाहै तो सर्व आनद हुए जातेहैं चलो अब विलम्ब करना योग्य नहीं ।

(सब जातेहैं.)

पंचम गर्भांक ।

(स्थान सघनवन)

[पवनजयका योगीके वेषमे हाथमे इकतारा लियेहुये प्रवेश.]

पवनजय–

दोहा–"हाय दई कैसी भई, विरह व्यथा अतिदीन ।
प्यारी मेरी कितगई, मन मुरझात न क्षीन ॥

बतादे कोई प्यारी हमारी किधरगई है वह मन लेनहारी ।
बनेहीं योगी उसके विरहमें गँवाई तनकी सुधबुधहै सारी ॥
फिरते वनीमें हमहैं भटकते कहा है अबला विरहाकी मारी ।
दुखिया वियोगन विरही हम उसके विपतहै हमपर आपत्ति भारी" ॥

हे प्रिये ! मुझे इस वियोगमे डाल कहा चलीगई क्या सास श्वशुर और तेरे माता पिता ऐसे कठोर हृदय और निर्दई निठुर बन गये कि तेरी दीन दशापर उन्हें तनक दया न आई(रोताहै)हाय यह सब मेरीही मूर्खताका कारणहै ।

[एक ओरसे राजा महेन्द्र हृदयवेगा ओर प्रसन्नकीर्तिका और दूसरी ओरसे प्रह्लाद केतुमती और प्रहस्तका प्रवेश.]

सब–(पवनजयसे) हे राजकुँवर ! हम सबसे विमुख होकर आपने यह क्या दशा बनाई है ।

पवनजय–(कुछ ध्यान न देकर रोताहुआ) हा प्रिये ! प्रिये ! तुम कहां हो यदि इस लोकमें हो तो क्यो मुझे सन्तापमे डाल रक्खा है वरन् मैं भी तुम्हारे पास आताहूँ ।

सब–पवनजय ! यह क्या कह रहेहो बोलो तनक मुखसे तो बोलो हम अपराधी तो है परन्तु क्षमा करो और ऐसा विचार न करो यदि अंजना कहीं इस पृथ्वीपर है तो ढूंढते हैं धैर्य धरो धैर्य धरो ।

(एक मुद्रिका ऊपरसे गिरतीहै)

पवनजय–(मुद्रिकाको उठाकर) हैं ! यह क्या ? यह मुद्रिका इस वनमें कहांसे आई यह तो मेरी है (रोताहुआ) क्या उस प्राणप्यारीका देह पतन होनेपर किसी पक्षीको मिल गई (दहाड मारकर) हा प्रिये ! हा प्राणप्रिये ! (मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरना चाहता है)

प्रतसूर्य–(प्रवेश करके दौडकर पवनजयको सँभालता हुवा) हे सज्जन! चेत करो अहो राजकुलभूषण ! चेत करो मै तुम्हारी प्रियाका समाचार लेकर आयाहू–सावधान होकर सुनो ।

महेंद्र–(प्रतसूर्यसे) आपने इससमय कैसे कृपा की ?

प्रतसूर्य–(सबसे प्रणाम करके) यदि अपराध क्षमा हो तो पवनजयसे कुछ वार्तालाप करलू फिर निवेदन करूगा ।

सब–यदि आप कुछ उपकार करसकतेहैं तो विलम्ब क्यों है ?

पवनजय–(आखें खोलकर) अहो ! यह क्या स्वप्न देख रहाहू (प्रतसूर्यसे) अरे ! तू कौनहै क्या कहताहै-कहाँहै मेरी प्रिया जिसका सदेशा लायाहै ?

प्रतसूर्य–हे पवनजय!सावधान हो–यहस्वप्न नहीं है-और मेरीप्रार्थना सुनो।

पवनजय-क्या सत्य(उठता हुवा) तुम अजनाके निकटसे आये हो ? कहो कहो वेग कहो वह दुखियारी कहा है ? और तुम कौन हो ? तुमको तो एक समय मानससरोवरपर देखाथा ।

प्रतसूर्य–पवनजी ! मैं हनुरूहद्वीपमें रहताहू प्रतसूय मेरा नामहै आर तुम्हारी भार्या अजना मेरी भानजी है, एक समय सध्याभ्रनामा पर्वतकी यात्रा करके विमानद्वारा अपने द्वीपको जाताथा मार्गमें अजना और वसंतमालासे मिलाप हुवा, एक पुत्रभी अजनाकी गोदमें था सर्व वृत्तात जानकर जब उस बालककी सूरत आपसे मिलती हुई देखी तो अजनाका निरपराधी होनाभी निश्चय होगया ।

पवनजय–तो मैंने जानलिया कि, आप उस द्वीपके नरेशहैं हे राजन्! मेरा अपराध क्षमा करना मेरी बुद्धि स्थिर नहीं. कहिये वह प्रिया बालक सहित कुशलपूर्वक है ? ।

प्रतसूर्य-सुनो ! फिर मै उन तीनो प्राणियोको विमानपर बैठा अपने नगरको ले चला वह बालक बालक्रीडाकर विमानसे उछलकर पर्वतपर गिरपडा।

पवनजय–(मस्तकधुनकर) हाय बेटा ! हाय बेटा ! ! हे आत्मज !!! मैंने तो तुम्हारा मुखभी नहीं देखा ।

प्रतसूर्य–कुँवरजी ! धैर्यधरकर सर्व वृत्तान्त सुनलीजिये आपका पुत्र कुशलपूर्वक है वह पराक्रमी और तेजस्वी बालक शिलापर ऊचेसे गिरकरभी वैसेही बालक्रीडा करतारहा और तनक चोटभी न आई । फिर मैं विमानपर बैठाकर अजनाको उनकी सखी और पुत्र सहित अपने नगरको लेगया ।

पवनजय–(विह्वलसा होकर) तो अब वह मेरी प्राणवल्लभा कहा है ?

प्रतसूर्य–हे पुत्र! अधैर्य नहो--वह तुम्हारे दर्शनोकी परम अभिलाषिणी है।

पवनजय--

दोहा–"पवनपियारी अंजना, गई पवनके साथ ।
प्रियाप्रसँग बिन पवनजय, पल पल मलताहाथ " ॥

अञ्जना–(प्रवेश करके उसीमे मिलतीहुई)

दोहा–"प्रीतिकरी अरु पति गई, पति बिछुर मम माथ ।
पीपी करत पुकारती, पतित वियोगिन नाथ "

[सुशीला और वसंतमालाका बालक सहित प्रवेश.]

पवनजय–(उठकर) प्रिये ! (दौड़कर अंजनाको गले लगाना चाहताहै)

प्रहस्त--मित्र ! सावधान, कुछ किसीकी लज्जाभी है ।

अंजना–(पवनजयको देख मुसकुराकर शिर नीचा करके चुप)

और सब--(प्रतसूर्यसे) हे राजन् ! आपने हमको बचा लिया ।

प्रतसूर्य--मैं आपका दासहूं बहुधा एक साथ अति हर्ष प्राप्तहोनेसे हानिकी सम्भावना होतीहै इसीकारण मैंने शनैःशनैः सूचित कियाहै ।

अंजना--(माता पिता और सास श्वसुरके पैरोंपर गिरती हुई) अब मेरे निरपराधी होनेको निश्चय करलीजिये ।

महेंद्र--प्रह्लाद हृदयवेगा और केतुमती--पुत्री ! वह सब अपराध हमाराहीहै, तेरे पातिव्रत्य और शीलधर्मका भलीभाँति प्रमाण होगया हमने अज्ञानताके कारण तेरा निरादर किया, हमारा अपराध क्षमाकर और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्वामीके सग रह--तेरा पुत्र चिरजीवरहै (वसतमालासे) सखी तुमकोभी हमारा धन्यवादहै अपनी सहेलीसे भली मित्रता निभाई उत्तम स्त्रियोंका यही कर्तव्यहै (प्रतसूर्य और सुशीलासे) आपने इस दुःखी अबलापर और हमारे ऊपर जो अनुग्रह किया उसका सहस्त्र जिह्वासेभी धन्यवाद नहीं देसकते ।

प्रतसूर्य--यह आपका अनुग्रहहै मुझसे जो होसका यथाशक्ति आपकी सेवा की, यह तेजस्वी पुत्र पर्वतकी कदरामे उत्पन्न हुवा इसलिये श्रीशैल्य इसका नाम रक्खाहै और हणुरूहद्वीपमें इसका जन्मोत्सवहुवा इसलिये हनूमानभी इसका दूसरा नामहै ।

प्रसन्नकीर्ति--(अजनासे) बहिन ! मेराभी अपराध क्षमा करना ।

अंजना--(माता पिता सास श्वशुर और भ्रातासे) आपका किसीका कोई अपराध नहीं, सत्यवृत्तान्त आपको सूचित नहीथा आपने जो कुछ किया उचित था, व्यभिचारिणीको ऐसाही दण्ड होना चाहिये (प्रतसूर्यसे) आपकी कृतज्ञताका पलटा तो मैं किसी भाँति देही नहीं सकती ।

सब-(अंजनासे) सुन-

"अरी हम हितैषी तू मन रंजना, अरी हमरी प्यारी परम अजना ।
तुझमें न दूषणका लेशमात्र है, है दूषित करै जो भरम अंजना ॥
विपति जो पडनहारथी पडगई, उदय अब हुये शुभ करम अंजना ।
पातिव्रत्य तेरा प्रमाणित हुवा, निवाहा जो कुछथा धरम अंजना" ॥

[मणिचूल और रत्नचूलाका प्रवेश.]

दोनो--चौपाई ।

"धन्य अंजना परम प्रवीना । धन्य शील तुम पालन कीना ॥
धन्य पिता जननी तुव भ्राता । धन्य कुलीन सुशोभित गाता ॥
धन्य पवनजय प्रभू तुम्हारे । धन्य वधू तुम पवन प्यारे ॥
श्वशुर तिहारे धन्य सासहू धन्य तिहारी ।
पुत्रवधू तुम धन्य शीलवंती तुम नारी ॥
तुम मामाहू धन्य सुशीला प्रिया सुखारी ।
धन्य तिहारो पुत्र जाय वाकी वलिहारी ॥

दोहा-धन्यवाद हम देतहैं, धन्यधन्य तुम वृंद ।
धन्य भाग्य सव मानके, रहिस करो आनंद ॥

(सब प्रसन्नतासे नृत्य करते जातेहैं)

(धीरे धीरे परदा गिरताहै)

इति अंजनासुंदरी नाटक समाप्त ।

शुभम् ।

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.